

में था जज का अर्दली

मैं था जज का अर्दली

(आत्मकथा-1)

निंदर घुगियाणवी

लेखक की अन्य रचनाएं

1. काले कोर्ट का दर्द
2. न्यायपालिका डायरी (भाग-I)

शिलालेख, दिल्ली-110032

अनुक्रम

आरंभिका	9
लाल कोठी	21
यू बना अर्दली बनने का सबब	24
नौकरी पर पहला दिन	30
अदालत में हंसी	38
जज सहब की भी बदली हो गई	41
नए साहब की सेवा में	45
साहब को सुनाई तूंबी	50
साहब की नज़रों में मैं मरासी बन गया!	57
जब जज को भैंस भेंट में मिली!	63
एक नया स्यापा	68
मिलने लगीं जज से गालियां	75
जामुनों की ऋतु!	85
साहब का सादू और साली	89
तोहफे लेने-देने के दिन	97
मेरी चोरी पकड़ी गई	105
गाने लगा साहब	114
भैंस की बछिया का बिछोह	119
साहब का पैर टूटा	128
मेरा और साहब का तबादला	138
और मैं गांव भागा!	145

ISBN : 9978-81-7329-378-8

© : लेखक

प्रथम संस्करण : 2016

मूल्य : ₹ 150.00

आवरण : प्रवीण राज

प्रकाशक : शिलालेख

4/32, सुभाष गली, विश्वास नगर

शाहदरा, दिल्ली-110032

email : shilalekhbooks@rediffmail.com

info@shilalekhbooks.com

कम्पोजिंग : गणपति कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032

मुद्रक : बी. के. आफसैट, दिल्ली-110032

MAIN THA JAJ KA ARDALI (Autobiography)

by Ninder Ghugianvi

Delightful Read

Ninder Ghugianvi telephoned me one day and came in contact. I did not know him, but I was impressed by what he told me. He had actually been an orderly in a Judicial Court and had observed the ways of Indian justice, with a very perceptive eye at close quarter. As is fairly common, after recruitment he was put in the Judges house to do kitchen work, gardening work, look after the buffaloes and anything that pleased his Honour and his lady wife. His first judge and family were pleasant, but the second was the most difficult person. Peons have to suffer and accept all that, their masters inflict on them.

Nindar has an observant eye, a mischievous observatory power, and a great command over Gurmukhi language. He is from the soil and he can even bring out the nuances of dialect, specific to the regions of Punjab.

The book is a delightful read and I sat up late at night to run through it. I enjoyed it. It is a very perceptive study of human nature, judges, their wives, court munshis, peons, waqeels and false witnesses; all of the strange fish that gather in a district judicial Pond.

Since his first book he has gone on to write many more and is most active in Punjabi writing. I am delighted to know him and to congratulate him. He is another valuable addition to Punjabi writing. What is more, unlike many well known Gurmukhi writers, his language is of the soil. It is not contaminated with the heavy influence of Hindi and Sanskrit after 1947, and the removal of all influences from the West that came into the language, over the past centuries.

I wish him well and will watch his progress with interest.

Dr Manohar Singh Gill

MP

(Ex Sports Minister, Govt. Of India and
Cheif Election Commissioner, India)

आरंभिका

1996 या 97 की बात होगी, निंदर घुगियानवी से मैं पहली बार पटियाला, भाषा भवन में मिला था। वह वहाँ कच्चा-पज्का-सा मुलाजिम था। काम आने को तत्पर तथा सेवा भावना से भरपूर। 'अंकल जी, अंकल जी' कहते का मुंह न थकता। बात बात पर हँसता। मैंने उस समय तक इसकी कोई रचना तो नहीं पढ़ी थी पर इसका नाम साहित्य सभाओं की खबरों में पढ़ा था।

दूसरी बार यह एक साहित्यिक समागम में मिला। इसकी हँसी गायब थी। यह खासा दुखी हो रहा था। इसकी कच्ची-पज्की नौकरी चली गई थी। यह हर बड़े लेखक से कह रहा था, "अंकल जी, कहो ना भाषा विभाग के निदेशक से, मेरे साथ किया अन्याय दूर करें।"

मैंने इसे बाबा नानक की साखी सुनाई, जिन्होंने एक उजड्डु गाँव को बसे रहने का वरदान दिया था, ताकि वे अपनी उजड्डुता फैला न सकें और एक सज्ज गाँव को उजड्डु हो जाने का वचन दिया था जिससे उनका सदाचार दूर-दूर फैल जाए। उजाड़पन कई बार बसने से ज्यादा लाभप्रद सिद्ध होता है। मैंने इसे अपना उदाहरण दिया कि कैरोंशाही के वज्त मुझे अध्यापक लहर की सरगर्मियों तथा मार्क्सवाद से नज़दीकी के कारण दस साल की पज्की नौकरी से हटा दिया गया। मैं भी एक बार उदास हो गया था ज्योंकि उस समय के मानसिक दुख से लगता था कि कोई भी रास्ता खुला नहीं है, अब मैं और ज़्यादा कर सकूंगा। परन्तु अब पीछे झाँकता हूँ, तो लगता है कि अगर मेरे ऊपर 'सरकारी कृपा' न हुई होती तो भटिंडा जिले के किसी स्कूल में पढ़ा रहा होता। संभवतया न ही साहित्य में और न ही परिवार में अब वाली प्राप्तियाँ कर पाता। मैंने इसे कहा कि बेदिल न हो, कोई रास्ता जरूर निकलेगा।

मेरा खयाल है कि अगर यह भाषा भवन की नौकरी करता रहता, उस रास्ते पर इतना आगे न जा पाता जिस पर अब चल रहा है।

फिर जब मैं 'पंजाबी ट्रिज्यून' का संपादक था, एक दिन वह मेरे दफ्तर आया। रस्मी बातचीत के बाद इसने जज संबंधी लिखे अपने लेखों की चार किश्तें मुझे पकड़ाते हुए कहा, "अंकल जी, यह छापो आप एक-एक कर...बढ़िया हैं जी...छाप दो अंकल जी...हैं जी।"

मैंने उस समय तक भी इसकी कोई रचना नहीं पढ़ी थी। मैंने इसकी ओर ध्यान से देखा। मुझे यह 'बचुंगड़ा' सा लगा, थोड़ा-थोड़ा बच्चों सी बुद्धि वाला। मैंने कहा, "पढ़ के देखूंगा। उन्नीस-इक्कीस का फर्क तो चलो अनदेखा किया जा सकता है, पर बिना पढ़े ही छापने का वादा कैसे कर दूँ तेरे से?"

इसकी राय पक्की थी, "ना अंकल जी, ये तो बहुत बढ़िया हैं जी...मेरे कई दोस्त-मित्रों ने पढ़े हैं।"

"जैसा तू वैसे तेरे दोस्त-मित्र...जवाजे का गवाह मेंढक।" मैंने इसके लेख फाइल में रखते हुए कहा। यह कच्चा-सा होकर हंस पड़ा।

इसके जाने के बाद मैंने 'दाल में से दाना टटोलने' के लिए इसका पहला लेख निकाला। जल्द ही, तीन-चार पैरों पर नज़र मारी तो लगा कि इसे तो शुरू से पढ़ना चाहिए और काम छोड़कर चारों लेख पूरे पढ़ गया।

मुझे हैरानी भी हुई और खुशी भी। ये लेख अपनी कुछ विशेषताओं के कारण सचमुच बढ़िया थे। इनको बढ़िया कहने वाले दोस्तों-मित्रों को इन विशेषताओं का पता था कि नहीं, मुझे नहीं पता। निंदर को स्वयं इनका पता था या नहीं, मुझे ये भी नहीं पता।

एक तो इनमें एकाग्रता थी एवं विषय केंद्रित थीं। कुछ भी बढ़ा-चढ़ा नहीं था। ये उन लेखकों के लेखों की तरह नहीं थी, जो लेख को, उदाहरणार्थ, जातिगत लिखना शुरू करते हुए उनको भैंस से भी बेअकल कहकर दो पैरे भैंस पर भी लिख देते हैं। फिर स्टेशन पर रहेड़ी वालों

का जिक्र करके दो पैरे चना-पूरी के बारे में जोड़ देते हैं। अंत में अलग-अलग जगह पैदा हुए चनों को एक-सा बताकर जातिगत लोगों को बुद्धि देते हैं कि वे चने की तरह सभी मनुष्यों को एक-सा समझें। निंदर घुगिआनवी दायें-बायें की चने की फसल पर ध्यान दिए बिना सीधा अपने निश्चित विषय की पगडंडी पर चलता है।

दूसरी बात, भाषा की चुस्ती। इसको अपनी बात पेश करने के लिए, अपनी भावना प्रदर्शित करने के लिए समुचित शब्द चुनने की समझ थी। कहीं भी यह महसूस नहीं होता था कि वह जो कहना चाहता है, वह कहा नहीं गया।

तीसरी बात, किसी पात्र के संबंध में सीधी टिप्पणियां किए बिना घटनाओं में से उसका अच्छा-बुरा स्वभाव, नेक-बद चरित्र उजागर करने की इसकी योग्यता। वह किसी व्यक्ति से जुड़ी दो-चार घटनाएं बताता था और उस व्यक्ति को बिना किसी पर्दे के, बिना किसी मुखौटे के पाठक के सामने खड़ा कर देता था, उसके अच्छे-बुरे रूप में।

चौथी एवं आखरी बात, इन लेखों का सामाजिक महत्व। बेशक न्यायपालिका को प्रजातंत्र के चार स्तंभ में से एक गिना जाता है, पर वास्तविकता यह है कि यह सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ है। जहां विधान सभा मुर्गों की लड़ाई का तमाशा बन चुकी है, कार्यपालिका एड़ी से चोटी तक भ्रष्टाचार से सने गारे में लिपटी है, संचार माध्यम जनहित के पहरेदार होने के स्थान पर बड़ी हद तक सजा के चाटूकार बन चुके हैं। यहां गरीबों की आखरी आशा, बेघरों का आखरी घर तथा बंद दरवाजों के बीच एक अकेला खुला दरवाजा न्यायपालिका ही रह जाती है। परंतु अगर न्यायाधीश का स्वरूप निंदर घुगियानवी के जज साहब वाला हो, तो अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं कि इस स्तंभ को भी किस हद तक 'रेही' और 'खोरे' ने बौना बना दिया है।

मैंने उसे पत्र लिखा कि अगली किश्तें भी साथ-साथ भेजता रहे। अगर निंदर इन बातों के मुख्य प्रसंग के संबंध में सचेत है तो

अच्छी बात है। अगर इसने अपनी आपबीती ही लिखी है और मुज्य प्रसंग उसमें से स्वयं उजागर हो गये हैं, तो भी अच्छी बात है। कई बार तो ये एक आधे वाज्य में बड़ी बात कह जाता है। इसने न्यायपालिका के भ्रष्टाचार की लंबी-चौड़ी चर्चा किए बिना इतना लिख कर ही नज़्शा खींच लिया है : इन जाटों का केस साहब के पास था। वैसे केस तो उनके पक्ष में ही होना था, पर वकील ने कह-सुनकर तोहफे के तौर पर साहब को भैंस भेंट करवा दी। वकील न्याय के लिए लड़ने की जगह जजों के दलाल बनते हैं तथा जज न्याय करने की जगह न्याय बेचते हैं, तोहफे के तौर पर भैंस भेंट की जाती है।

जजों द्वारा सरकारी कर्मचारियों, अर्दलियों को घरों में दास की तरह प्रयोग करना दुराचार तो है ही, गैरकानूनी भी है। यह दुराचार और गैरकानूनी काम वो करते हैं, जिनसे उच्च सदाचार एवं कानून की रक्षा की अपेक्षा है। साक्षात्कार “अमका सिंह बनाम धमका सिंह हाजिर हो” की आवाज़ देने वाले का हो रहा है और साक्षात्कार लेने वाला जज पूछता है, “घर के कौन-कौन से काम जानता है? रोटी-वोटी बना लेता है?” और वह स्पष्ट कह देता है, “बेटा सबसे बड़ी बात तो यही है।” पर जज निवास में ये रोटी-रूटी जो रूप धारण करती है, वह कुछ ज्यादा ही है। वैसे तो यह काम रूपी जंजीर एक साक्षात्कार लेता जज ही समझा देता है, “बेटा, इस विभाग में तो ए-टू-ज़ैड सारे के सारे काम करने पड़ते हैं, रोटी बनाने से लेकर बर्तन साफ करने, कपड़े धोने, पशुओं का दूध निकालना, उन्हें खिलाना, गोबर साफ करना, बच्चों को स्कूल लाने-ले जाने तक।” यह सोचकर कि कोई काम रह न जाए, वह ये कहकर बात खत्म करता है कि कोठी-कचहरी के सारे के सारे काम करने पड़ेंगे। वह बंधुआ मजदूर वाला लक्षण भी स्पष्ट करता है, “छुट्टी-छाट्टी कोई नहीं, इतवार की भी नहीं।” फिर जब पुराने जज का तबादला तथा नये के आने के बीच कुछ दिन मिलते हैं तो सुपरिंटेंडेंट ही बीच में दाव लगा लेता है। वह

हुज़्म करता है, “इतने दिन तू मेरे पास ड्यूटी दिया कर।” कई बार तो काम की इस जंजीर में कोई अजीब कड़ी भी जुड़ जाती है जैसे जाट की भेजी भैंस का रंभाना सुनकर जज साहब हुज़्म देते हैं, “ओए, इधर आ। इसे चुप करा साली मेरी को, कैसे रंभाने लगी है। साली, घर आई है, यह कौन-सा कसाईयों की हवेली है, हूँ, कैसे रंभाती है, बेटा चो...।”

एक आश्चर्यजनक बात जज साहब का शब्द भंडार है। अगर उसे लिखने का शौक होता, भाषा उसे कभी दगा न देती। उदाहरणार्थ निंदर के लिए उसके द्वारा बात-बात पर इस्तेमाल किए गए गाली-विशेषणों के मोती अनेक पन्नों पर बिखरे हैं। वह उसे ‘निंदरी जिंदरी, तूंबी मास्टर’, से शुरू करके ‘मरासी, साला मरासी, कंजर का मरासी, झल्ला, भौं भौं करने वाला, कुजे की जीभ वाला, भूतना, साला हरामी, साला भंड, साला पाखंडी, कंजर का, शैतान की टूटी, दुर फिटे मुँह, ढेरना, बंतुना-सा, कुज़ा, साला घोघड़ कौवा, उल्लू का पट्टा, पागल, कलंक, अंधा।’ वगैरह वगैरह कहता हुआ मां-बहन की गालियों पर पहुंचकर अंत करता है। अगर मुँह की भाषा को कम प्रभावशाली रह गई समझता है, तो हाथ की भाषा प्रयोग करते हुए इसको बहन की गाली निकालकर गले से पकड़कर जांघों में मुक्का मारने से भी नहीं संकोच करता।

कहावत है कि एक बनिये के घर, जो गांव में उगाही के लिए गया, एक जाट से रोटी-दूध खाता-पीता था। वह जाट किसी मजबूरीवश रात काटने आ गया। बनिये ने खूब सेवा की पर सुबह चलते वज्र जाट के आगे हाथ जोड़कर गुजारिश की कि गांव में इस बारे में कोई जिक्र न करे। हैरान हुए जाट को उसने समझाया, ‘अगर सेवा अच्छी लगी, कहेगा, साले लाले ने बड़ी सेवा की। अगर अच्छी न लगी, कहेगा, साले लाले ने ढंग से सेवा नहीं की। मुझे तो दोनों तरफ गालियां ही मिलनी हैं।’ यही बात निंदर के जज साहब की है। अगर उसके गीत-

संगीत की तारीफ करता है, तो जी गाली देकर ही करता है, “दुर फिटे मुंह तेरे कंजर के! जा ओए तुझे कुछ नहीं आता सिवाए टुंग-लुंग-लुंग के।” अगर उसके गीत-संगीत की निंदा करता है, फिर तो गाली देनी ही है, “हैं ओए! सुना तेरा गाना? ऐसे गाते हैं बेटा? हम गाना जानते हैं, तू ज़्या जानता है सिवाए सिर खाने के?”

निंदर ने एक अच्छी बात यह की है कि ‘महानायक’ से पहले पिछले जज साहब जो अच्छे मनुष्य हैं, का आवश्यक जिक्र करके संतुलन कायम किया है। ऐसे यह बिगड़ा जज, न्यायपालिका का प्रतिनिधि रूप नहीं बनता कि सारी न्यायपालिका बुरी है, अच्छे जज भी हैं।

पहला, जो जल्दी ही बदल जाता है, एक दिन कहता है, “बेटे तू गुणी लड़का है, आगे और पढ़ाई कर ले। अब तेरी नौकरी वाला काम तो हो ही गया। पढ़ाई तेरे काम आयेगी। सारी उम्र अर्दली थोड़े ही बना रहेगा।” इस जज साहब की पत्नी भी नयी जगह मिलने गये को कहती है, “निंदर बेटे, मेरी बात सुन, हौसला ना छोड़ना, फिर तुझे तेरा साहब प्यार भी तो बहुत करता है। अगर शराब पीकर उलटा-सीधा बोलता है तो चुप रहा कर, सारे एक-से नहीं होते। कोई और अच्छा आ जायेगा।” वापसी के समय इसको पैंट-कमीज़ का बढिया कपड़ा भी देता है और कुछ रुपये भी जेब में डाल देता है। उनका इकलौता नौजवान बेटा रिंकू तो पहले दिन ही इसका नाम सुनकर कुर्सी से खड़ा हो जाता है। खुशी-खुशी हाथ मिलाकर कहता है, “यार तू कैसे आ गया ऐसे काम में, हैं? तू साहित्यकार है और अर्दली लगा है यार।” वह अपनी मां को इसका लेखक होना बताता है तो वह प्रभावित होकर साहब से इसकी नौकरी के पज़के आर्डर ही करवा देती है। वह अपने पिता को बताता है, “यह देखो, राष्ट्रपति के हाथ से किताब रिलीज़ करवा रहा है। कैसे खड़ा है जंच कर, और यहां अर्दली लगा है। यह सब पेट का मसला है। मैं तो आप इसको कहता हूँ कि आगे और पढ़े

तो अच्छी नौकरी लगे।”

इसी प्रकार तीसरा जज, जिसकी सेवा बिगड़े जज के बाद पल्ले पड़ती है, भी अपने काम में मस्त रहने वाला अच्छी आदमी है। परन्तु उसकी अच्छाई की सारी कसर नौकरी को टिकने न देने वाली तथा तंग करने हेतु टूट पड़ने वाली उसकी पत्नी पूरी कर देती है।

ऐसे सारे जज साधारण बंदों की तरह विविध रूप में सामने आते हैं। वे सब किसी विशेष न्यायकार एवं न्यायपालिका सांचे में ढले हुए नहीं दिखते, जबकि सामाजिक भलाई के लिए जरूर ढले होने चाहिए।

जब निंदर ‘पंजाबी ट्रिज्यून’ के कार्यालय मुझे मिलने आया था, मैंने मजाक में पूछा था, “भई, एक बात सच-सच बता, तू जितना दिखता है, इतना ही है या इतना धरती के अंदर भी है?”

यह खिलखिला कर हंसा, “ना अंकल जी, धरती में तो मैं ज़रा भी नहीं जी। मैं तो इतना ही हूँ जी बस छोटा-सा।” फिर वो अपने छोटे से शरीर की ओर देखकर बोला, “और बच्चे कितने बड़े होते हैं जी, अंकल जी? मैं तो आपका बच्चा हूँ, जी।”

परन्तु यह किताब पढ़कर लगता है, यह थोड़ा-सा तो जमीन में जरूर है। साहब तो जो था सो था ही, यह भी उसके साथ पंगे लेने से नहीं हटता था। यह आप मानता है, “कई बार तो जज साहब को छोड़कर मुझे बड़ा स्वाद आता था।”

एक दिन जज साहब को पिलाने के लिए जब यह पानी का गिलास हाथ में पकड़ कर ले जाता है, वह गालियाँ देकर कहता है कि वह या उसका मेहमान कुछ भी मांगे तो ट्रे में रखकर लाना। अगले दिन जब एक मेहमान इसको कार में रखी ऐनक ड्राईवर से मांगकर लाने को भेजता है, यह जानबूझकर ऐनक भी ट्रे में रखकर पेश करता है। जज माथे पर हाथ मारता है, “दुर फिटे मुंह तेरे! अकल का मारा है! यह ज़्या?” यह फिर भी चुप रहने की जगह उसका कल वाला आदेश याद करवा देता है। उसे और आग लग जाती है, “चुपकर,

साला भौंकता है! अगर मैं जूते या चप्पल मंगवाऊं, वो भी ट्रे में रखेगा? भाग जा यहां से मूरख सा।” निंदर रसोई में जाकर खूब हंसता है।

जब भैंस की बछिया मर जाती है, ये भोले मुंह से कहता है, “सरजी, भैंस बड़ी रोई रात, अब भी रो रही है। बीच बीच में याद भी करती है बछिया को, बेटी मर गई उसकी।” जज का भड़कना स्वाभाविक है, “फिटे मुँह तेरे पैदा होने के! मैं ज़्या करूं फिर? तू भी रो ले भैंस के गले चिपक के। जब तू मरेगा, तेरी मां भी ऐसे ही रोयेगी तुझे।”

झाड़ू न मिलने पर ये जज को जाकर पूछता है, “सर, आपने तो नहीं देखी झाड़ू कहीं रखी?” जज आगबबूला न हो तो ज़्या करे?

“मैं झाड़ू की रखवाली करता हूँ यहां? मैं झाड़ू संभाला करूं? मुझे झाड़ू पूछता है?” वह भड़क जाता है।

उस दिन तो हद ही हो जाती है जब जज अभी ठीक से कार में बैठा भी नहीं होता और निंदर दरवाजा जोर से बंद कर देता है। उसका पैर दब जाता है। दांत पीसता पैर को हाथों से दबाता वह चीखता है, “ओ हो, हाय ओए! तेरा बेड़ा गर्क हो जाए! ओ हो हो, मैं मर गया, आज, आज, कोठी आ जा, मैं चबवाऊं तेरी नाको चने! आईयो, तेरी टांगें तोड़ूं।” इसके कोठी पहुंचने पर वह भड़कता है, “तू हरामी! निकल जा यहां से। साले, कुज़ा कहीं का...कहां पल्ले पड़ गया मेरे! अंधा कहीं का, तेरी नाव डूब जाए बीच समुंदर! ऐसे बंद करते हैं दरवाजा? पैर तोड़ दिया मेरा, भूतनी का कहीं का!”

जब डाक्टर दवाई मलकर रात को एक बार फिर लगाने को शीशी इसकी ओर करता है, जज चिल्लाता है, “इसने ज़्या लगानी है राख और मिट्टी...लाओ मुझे पकड़ाओ डाक्टर साहब आप, मैं अपने आप ही लगा लूंगा।”

देखने वाली बात है इसके जानबूझ या अनजाने किए कारनामे से गेट पर गनमैन भी बागोबाग है और दूसरा अर्दली किशन भी कहता है,

“साहब भी तेरे से ही ठीक होता है। मेरे जैसे को ज़्या समझता है...अच्छा पैर तोड़ा साले का।”

साहब पहले बीस-पच्चीस दिन अच्छा रहता है। इसके गाने की तारीफ करता है, “ओए निंदर, तूने तो कमाल कर दिया। तूने यहाँ अर्दली लग के ज़्या लेना था ओए? तू स्टेज पर गा...बहुत रुपये...तेरे पास कला है।” परन्तु जल्द ही वह बात बात पर मरासी कहने लग जाता है। वह गालियों के लिए चुन-चुनकर शब्द लाता है। यह अपने अंदाज लगाता है कि जज को कोई घरेलू टैंशन है, बीबी जी लड़ती होंगी जो यहां नहीं आती। अब इसे चैन कहां? यह जाकर पूछता है कि बीबी जी कब आयेंगे। इसने तो जैसे दुखते पैर पर पैर रख दिया हो, “तूने बीबीजी से ज़्या दही लेना है? कुज़े की पूंछ है तू, बारह साल बाद भी टेढ़ी ही रही। भौंकने से हट जाया कर कभी।” बात उस समय तो बिल्कुल साफ हो जाती है जब साहब अपने साढ़ू से सुलह के यतनों के जवाब में कहता है, “देखो तहसीलदार साहब, मैं बहुत बुरा बंदा हूँ। मैं उस औरत के पैर ज्यूं पड़ूँ जाकर? आए...ना आए...।”

घरेलू परेशानी के अतिरिक्त जज के खिझे रहने का एक और कारण है, जो पुस्तक की अनेक घटनाओं से उभरता है, उसका निंदर से अंदर ही अंदर ईर्ष्या करना। ईश्वर ही जाने, वह भी इस संबंध में सचेत है या नहीं तथा यह भी इस बात को समझता है या नहीं। वह बात-बात पर इसे नहीं, इसकी कला को गालियां देता है। कहां वह एक जज, पर संबंधित लोगों के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। कहां यह अर्दली, जिसकी फोटो और लेख अखबारों में छपते हैं, जो साहित्यिक गोष्ठियों में शामिल होता है, जिसको रेडियो-टेलीविजन पर बुलाया जाता है। वह दिन में इससे बालों की मालिश करवाकर, शाम को पीकर “बाल दुखा दिए और उखाड़ दिए” कहकर बोलता है, “कोई बात नहीं बेटा, कोई नहीं...तुझे बनाऊं मैं बड़ा गवईय्या। साला बड़ा गवईय्या...आ गया...टुंग-लुंग-लुंग, मरासी कहीं का मेरे पल्ले पड़

गया।” समय समय पर उसका निंदा-राग जारी रहता है, “काम के वज्त हाथ ठरते हैं, टुंग-लुंग-लुंग करने के लिए कैसे चलते हैं सारा दिन? तोड़ूँ तेरी टांगें साले बड़ा गवइय्या। मैं करता हूँ तेरा हीला-वसीला, बड़े गवइय्ये का। कैसे खड़ा है साला अकड़ा कोढ़ी की तरह, मंत्रियों के साथ गले में हार डाले हैं...थोबड़ा है हारों वाला तेरा? तेरे गले में अगर मैंने टूटे जूतों के हार न डाले तो कहना। आ गया बड़ा गवइय्या तू...तोड़ूँ तेरी टांगें मैं...तेरी टुंग-लुंग-लुंग तोड़ूँ या तेरी गर्दन? दोनों में से कौन-सी तोड़ूँ? बता मुझे...कौन-सी तोड़ूँ ओए?...अगर तेरी उंगली काट दूँ मैं अभी, तेरी टुंग-लुंग-लुंग कैसे बजे? बजेगी? अगर बजे तो बता ओए।”

कहाँ तो शुरू के दिनों में जज इसको ‘कमाल कर दिया’ और ‘तेरे पास कला है’ कहकर अर्दली बने रहने की जगह स्टेज पर गाने की और खुली कमाई की सलाह तथा प्रेरणा देता है, कहां अब कहता है, “हैं ओए मरासी, अगर तू यह तुंबी पकड़कर बस या रेलगाड़ियों में गाने सुनाये लोगों को और हाथ में एक टूठ-सा पकड़ ले तो तुझे घाटा तो कोई नहीं रहना ओए।” वह “हीं...हीं...ही...” हंसता है। सबसे हंसाने वाला तो वह दृश्य है जब कभी भी न गाया और न बजाया होने के बावजूद जज आप इससे अच्छा गायक और बजाने वाला होने का दावा करके तुंबी पकड़ लेता है और गाने लगता है। जो घराट राग उसके मुँह से निकलता है और जो रुदन और विलाप बेचारी तुंबी की तारों में से निकलता है, उसका पूरा वर्णन पुस्तक में पढ़ने पर ही बनता है।

जज पहले बीस-पच्चीस दिन बढ़िया रहा। कीड़ा उसे तभी लड़ा। इस दौर में भी वह बिना पीये ठीक रहता था, पर शराब अंदर जाते ही उसके तौर बदल जाते थे। वो रोज़ शाम को पीता था जिसके साथ ही नौटंकी शुरू हो जाती थी। तबादला होते ही वो पलटकर फिर पहले दिनों जैसा हो जाता है, “ओए निंदरा, बात सुन ओए, तेरी तुंबी ज़्या

कहती है, टुंग-लुंग-लुंग? अब तेरी तुंबी कौन सुनेगा ओए? मैं कैसे सुनूँगा तेरी तुंबी? ओए इधर आ मेरे पास, आ इधर...बात सुन ओए! मैं कैसे सुनूँगा तेरी तुंबी? इधर आ इधर मेरे पास, आ ओए...बात सुन ओए बेटे, तेरी टुंग-लुंग-लुंग, बता मुझे, मैं कैसे सुनूँ? वह इसे अपने पास बैठाता है, आंखें भर आती हैं, इसको बाहों में लेता है, बच्चों की तरह रो पड़ता है, और एक पैग अंदर करके कहता है, “बात सुन ओए बेटे, अब जाती बार गीत सुना दे...कोई गा यमले जाट का।” गीत सुनकर उसके हवाले से कहता है, “ओए निंदरया, ओए अब हम ज़ी दूर के सज्जन हो गए ओए...कल को हमने भी दूर चले जाना है। ओए निंदरी, तेरी टुंग-लुंग-लुंग कहां सुनेगी अब? बेटा तू मेरे साथ ही चल...मैं तो तुझे साथ ही ले जाऊँगा...देखूँगा मैं कौन रोकता है तुझे।”

पाठक हैरान होता है, कहीं जज साहब हालात का मारा बिगड़ा हुआ, मूल रूप से एक नर्मदिल और जज़बाती आदमी तो नहीं? कहीं वह मनोरोगी तो नहीं?

यह सारा समय निंदर घुगिआनवी “दड़ वट, जमाना कट, भले दिन आयेंगे...” गाता और सोचता निकालता है। इसके लिए भले दिन लाने में तीसरे साहब की उज्जड पत्नी सहायक होती है, जब वह इसे स्वीटी के पेशाब पर पोछा मारने को कहती है। इसका स्वाभिमान जाग उठता है। यह सहने से ज्यादा पड़े रहने से डरता है, “मैंने नहीं बीबी जी, पोछा-पूछा मारना...मैं तुज्हे बताऊँ, मैंने नहीं मारना पोछा...कल कहोगे, हमारे बच्चों की लैटरिन उठा।” यह गीत इसके लिए यह रूप धारण कर लेता है—

“दड़ वाटा, जमाना काटा, भले दिन आ गए ओए।”

पुस्तक के शुरू में निंदर छोटी उम्र में पाठ करने की लगन के बारे में लिखता है और बताता है कि कहीं किसी अखंड पाठ के लिए पाठी कम पड़ जाता था तो इलाके के पाठी सिंह इसको ले जाते थे। अब जब पंजाबी साहित्य की अलग-अलग विधाएं काफी विकास कर रही हैं,

अच्छे वार्ताकार की अभी भी कमी है। मेरी कामना है, कम पड़े पाठी की जगह लेने वाले की तरह यह कम पड़ रहे वार्ताकार की जगह भी ले। इसमें अच्छा वार्ताकार बनने की पूरी संभावना है जो इस पुस्तक में भलीभांति उजागर हुई है।

‘पंजाबी ट्रिज़्यून’ में संपादक रहते हुए इस पुस्तक का काफी कुछ छापकर और बढ़ी संख्या में पाठकों तक पहुंचाकर मुझे खुशी हुई थी। निंदर घुगिआनवी को भी उत्साह मिला। साहित्य रचना कार्य में यह पहले से ज्यादा सरगर्म हो गया। उतनी ही खुशी मुझे इस पुस्तक को पाठकों की भेंट करते हुए हो रही है।

गुरबचन सिंह भुल्लर
ND-50 विशाखा एनज्लेव
दिल्ली-110088
फोन : 011-65736868

प्यारा निंदर

जब कभी मैं निंदर घुगिआनवी का गद्य पढ़ता हूं तो मुझे उसकी बेबाकी, उसकी मायूमियत, व्यंग्य और विनोदप्रियता बहुत अच्छी लगती है। उसने जिंदगी को बहुत करीब से देखा है, करीब से ही नहीं एक ऐसे कोण से देखा है, जहां से देखना तथाकथित मुअतबर लोगों के नसीब में नहीं होता। उसने ‘कुछ नहीं’ बनकर उन लोगों का तमाशा देखा है जो अपने को बहुत कुछ समझते हैं। उसका यह दृष्टिबिंदु की उसके गद्य को एक अलग ही सार्थकता और न्यारापन देता है।

निंदर की वह आत्म-कथनात्मक रचना है जो पंजाबी पाठकों में बहुत लोकप्रिय हुई और जिसके सात संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। उस पर टीवी सीरियल और रेडियो फीचर भी बने हैं।

छोटी उम्र में निंदर जज का अर्दली रहा। बेचारे जज को क्या पता था कि एक मासूम-सा लड़का उसे कितनी बारीकी से देख रहा है और उसके अंदर एक भावी लेखक छुपा हुआ है। इस रचना को मनोरंजक व मूल्यवान बनाने में निंदर की अनूठी प्रतिभा के साथ-साथ उस दिलचस्प स्थिति का भी हाथ है।

मुझे बेहद खुशी है कि अब इसका हिंदी संस्करण हिंदी पाठकों के लिए भी उपलब्ध है। मुझे पूर्ण आशा है कि उनकी पंजाबी पुस्तक की तरह ये भी उतनी ही लोकप्रिय होगी।

—सुरजीत पातर

मोह भरे बोल

‘मैं था जज का अर्दली’ का पंजाबी में पहला संस्करण 2001 में प्रकाशित हुआ था। अब तक इसके आठ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। तभी से दूर-दूर से पाठक इसकी मांग हिंदी में भी कर रहे थे। दो वर्ष पूर्व अनुवाद होकर तैयार था। किन्हीं कारणों से पुस्तक प्रकाशन में नहीं आ रही थी। पाठक पूछते रहे कि देरी ज्यों हो रही है। आम पाठकों के अतिरिक्त जज, वकील, अर्दली एवं न्यायपालिका से संबंधित लोग भी हिन्दी रूप का बेसब्री से इन्तजार कर रहे थे।

इस पुस्तक का अनुवाद उर्दू एवं तेलुगु में भी हो चुका है। मुझे अत्यन्त खुशी है कि मेरी आत्मकथा को पाठकों की ओर से इतना प्यार और सज्मान मिला है। जब कोई मुझे पूछता है कि तुझे तेरी लिखी किताबों में से सबसे ज्यादा अच्छी कौन-सी लगती है तो मेरे मुँह से स्वाभाविक ही निकलता है, ‘मैं था जज का अर्दली।’

इसका हिन्दी रूप पाठकों को भेंट करते हुए मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अनुवाद के समय मेरे पुराने मित्र नववेश नवराही और उनकी पत्नी ऋतु कल्सी ने मेरी बहुत मदद की, जिसके लिए मैं उनका दिल से आभारी हूँ।

निंदर घुगियाणवी

लाल कोठी

इसे ‘लाल कोठी’ कहते हैं। वे भी दिन थे, जब इस पर ‘दिन’ होते थे। लाल कोठी पर सचमुच लाली होती थी और खूब रौनक लगती थी यहाँ।

वर्षों बाद आज अपने जज साहिब की ‘लाल कोठी’ के पास से गुजरते हुए मेरे पाँव अचानक ही दरवाजे के सामने रुक गए हैं। दरवाजा उतार दिया हुआ है। मैं दरवाजा ढूँढने लगा हूँ। लोहे के तज़्तों की जगह टूटी-फूटी ईंटों की बौनी-सी दीवार खड़ी की हुई है।

कोठी के अंदर आक, सरकंडा, काई और घास समेत कंटीली बूटियां जमघट मारे बैठी हैं। कोठी के बीचों-बीच लगे लंबे, भारी और पुराने वृक्ष पता नहीं कौन काटकर ले गया है? दीवारों से सीमेंट की पपड़ियां गिर रही हैं। ईंटें भुरभुरा रही हैं।

‘लाल कोठी’ के बरामदे में जहाँ कभी हमारा साहब बड़ी शान से बैठता था, मिट्टी का बड़ा-सा ढेर लगा हुआ है...जैसे कोई किसी की कब्र खोदकर गया हो।

थोड़ा आगे होकर देखता हूँ...वो जगह...जहाँ मैं साहब के लिए सज्जियां तथा और कई कुछ उगाता था। वह जगह अब खुद-ब-खुद उग आए घास-फूस में छिपी हुई है। यहाँ मैंने खुरपा और कस्सी बहुत चलाई। मीठी गाजरें, करारी मूलियां और हरी भूकों वाले प्याज़ बोता रहा हूँ। यह ‘लाल कोठी’ मेरे अतीत की अनगिनत यादों के साथ बड़े नज़दीक से जुड़ी हुई है। आज वर्षों बाद याद करते हुए और कोठी को निहारते हुए मेरी आंखें नम हो गईं। यहाँ मैंने चाहे मुश्किल समय बिताया या आसान, आखिर समय तो समय होता है! दूर तक बीत

जाने पर वही मुश्किल समय अब मुझे अच्छा-अच्छा लगने लगा है...पता नहीं ज्यों ?

कहते हैं, मनुष्यों की तरह वृक्षों और घरों पर भी हमेशा एक जैसे दिन नहीं रहते...यह टूटते-बिखरते और उठते-बैठते रहते हैं। किसी समय 'लाल कोठी' महाराजा का 'मेहमान घर' होती थी। दूर-दूर से राजा-रानियां और उनके रंक-रंगीले यहां आकर ठहरते थे। समय बीता...राजा ज़ी बीत गए। कोठी ज़िला प्रशासन के पास आ गई। यहां उच्च-अफसरों के ठिकाने बन गए। मेरे साहब भी तो उच्च-अफसर ही थे, तभी तो उन्हें इस कोठी में ठिकाना मिला था। मेरे साहब यहां तीन साल का अरसा रहे।

खुले-खुले कमरे एक-दूसरे के साथ जुड़ते। उतनी ही बड़ी रसोईयां और गुसलाखाने। रातों को कई बार मेरा साहब दारू पीकर गरजने लगता तो 'लाल कोठी' भी गूंजती...एक कमरे से होती हुई आवाज़ सातवें कमरे तक रेंगती जाती तो लगने लगता, जैसे पागलाखाने में आए किसी 'नए पागल' को दौरा पड़ा हो।

नौकर के रहने के लिए...मेरा छोटा-सा कमरा कोठी के पिछली ओर था। उसके साथ पशुओं के लिए चारा कुतरने वाला टोका फिट किया हुआ था। इस छोटे-से कमरे में बैठकर मैं काफी कुछ लिखता था। यहां बैठकर ही मैं कई बार आधी-आधी रात तक रोया था। यहीं मैं कई रात...घंटों तूंबी बजाता रहा और धीमी आवाज़ में गाता था कि कहीं साहब या आस-पड़ोस मेरी आवाज़ ना सुन ले और गालियां ही ना पड़ जाएं।

मन में आया...देखूं तो सही...मेरा कमरा है या किसी ने ढहा दिया है ? मैंने कोठी के अंदर छलांग लगा दी। घास-फूस को पैरों से मसलता हुआ मैं पिछली तरफ चला गया। पुरानी लकड़ियों के ढेर से एक काली बिल्ली निकली और पड़ोस वाली कोठी में घुस गई। थोड़ा आगे गया तो तीन पिल्ले मरे हुए थे। मेरा कमरा...मेरी तरह ज़ज़्मी-

सा...बिना छत के आधा बचा था।

मेरा दिल बुरी तरह हिल गया। 'अरे तुम कहां... ?'

मैं एकदम हिल जाता हूं...जैसे अचानक उसने मुझसे पूछा हो ! फिर पीछे देखता हूं...कोई नहीं था। किसकी आवाज़ थी यह ? या मेरे कान बजे थे ? मैंने जल्दी से कदम पीछे किए और आंखें पोंछता हुआ 'लाल कोठी' से बाहर आ गया और गांव के रास्ते पर हो लिया।

यू बना अर्दली बनने का सबब

दसवीं से आगे पढ़ा ना गया। पिता जी कहते, 'कहीं कोई छोटी-मोटी नौकरी ढूँढ लो, भले ही चपरासी लग जाओ, पानी-धानी पिलाने को रख ले कोई...कहीं से चार पैसे आएंगे...।'

बापू की गांव में हरीजनों की तरफ छोटी-सी दुकान थी...जब वह शहर सौदा लेने जाता तो मैं दुकान पर बैठता था। गाने का बहुत शौक था। जब शौक ज़्यादा ही बढ़ गया तो बापू से कहा, 'मैं यमला जट्ट का चेला बनना चाहता हूँ, लुधियाने चलो मेरे साथ।'

बापू ने ना-नुकर की और प्यार से यह बात भी समझाई, 'बेटा महाजनों का लड़का, और काम मरासियों वाला करना चाहता है...? यह हमें शोभा नहीं देते, तुमने यमले से ज़्यादा लेना?'

मैंने जिद ना छोड़ी तो बापू मान गया। लुधियाना आए। उस्ताद लालचंद यमला जट्ट के डेरे में सालाना मेला बाबा पीर कटोरे शाह की याद में जुड़ा हुआ था, वहां उस्ताद जी अपने नए शागिर्द बनाते। कलाकारों की अच्छी भीड़ थी। मैंने भी पगड़ी भेंट की। उन्होंने पुरानी रवायत के अनुसार मुझे नमक की चुटकी प्रसाद के रूप में देकर चटाई और लड्डू भी बांटे। मैं उनका पज़्का शागिर्द हो गया और सूखे कद्दू की बनाई तूंबी पर उंगलियां मारने लगा। गीत भी उस्ताद जी के लिखे ही गाता था।

पाठ करने की लगन भी बचपन से ही थी। इलाके के पाठी सिंह भी जानते थे। कई बार किसी अखंड पाठ से कोई पाठी कम हो जाता तो मुझे ले जाते। मैं पाठ पढ़ता, तो लोग कहते, 'बई छोटा-सा लड़का है...बहुत आवाज़ है...बहुत अच्छा पाठ करता है।'

जिस दिन भोग होता, भोग के बाद मैं तूंबी टुनकाता...धार्मिक

गीत गाता...लोग रुपए देकर हौसला बढ़ाते। इस तरह काफी पैसे इकट्ठे हो जाते...सवा या डेढ़ सौ...रौल लगाई का अलग भी मिल जाता। मेवे...मिश्री...छोटी इलायची...छुआरे और सरोपा भी मिल जाता।

बीच में से कोई पाठी ईर्ष्या करता, 'यह मुंडू-सा दोनों तरफ से फायदा ले गया...तूंबी भी बजा ली...और रौल लगाई के भी ले गया, आइंदा से नहीं बुलाएंगे इसे।'

कोई और कह देता, 'काका, हमारे लड़के के शगुन पर भी आना...फलां दिन को।'

इस तरह प्रोग्राम भी मिल जाता और मैं घर से चला ही रहता था।

बापू ने दुकान पर मुश्किल से डेढ़-पौने दो सौ ही कमाया होता था...रुपए-रुपए के आलू-प्याज़ और पचास-पचास पैसे का नमक-हलदी बेचकर। मैं पांच-छह सौ बापू को पकड़ा देता। बापू कहता, 'नौकरी से यह काम बढ़िया है...।'

मैं कहता, 'बापू अब इस काम को बढ़िया कह रहे हो...तब ज़्यादा था, जब कहते थे, "यह मरासीपन महाजनों के लड़कों पर नहीं फबता।"'

बापू हंस देता। मेरा समय गुज़र रहा था।

एक दिन कचहरियों से गुज़र रहा था। एक साहित्यकार मित्र अपने रिश्तेदार वकील के अड्डे पर बैठा था। मुझे देखकर बोला, 'अरे किधर जा रहे हो...आओ, बैठो...सुनाओ कोई नई-ताज़ी।'

मैं जा बैठा। मित्र ने पूछा, 'अब ज़्यादा करते हो...ज़्यादा कारोबार है आजकल तुम्हारा?'

मैंने कहा, 'और ज़्यादा करना है...दसवीं पास को कौन डी.सी. लगा लेगा।'

दोस्त ने कहा, 'तुम ऐसा करो, जब तक कोई और काम नहीं मिलता, उतनी देर तुम इन वकील साहब के पास यहां आ जाया

करो...अपने रिश्तेदार हैं यह...इन मुंशी साहिब से काम सीख लो...और बन जाओ पञ्के मुंशी...दिहाड़ी तुज्हारी अच्छी बन जाया करेगी।’

दूसरे दिन से ही मैं वकील साहब के पास जाने लगा। वकील साहब ने अपने मुंशी से कह दिया, ‘इस लड़के को सारा काम सिखाना...अपनी जान-पहचान का है लड़का और कलाकार भी है...लेखक है।’

कुछ दिनों बाद मैं अदालतों के अंदर तारीखें लेने के लिए जाने लगा। जजों को देखकर जल्दी कहीं आगे होने का हौसला नहीं होता था। पीछे ही खड़ा रहता था...हिज्मत ही नहीं पड़ती थी कि जज से कहूं, ‘जनाब यह हमारा केस है, तारीख डाल दो।’

एक दिन पुराना मुंशी पृथी सिंह कहने लगा, ‘ऐसे तो नहीं चलेगा तेरा काम...घबराकर या डरकर जजों से दूर खड़े रहोगे तो खड़े रह जाओगे...बेटा तुम हौसला करके...अच्छी तरह हाथ में लिफाफा पकड़कर यानी सीधा अदालत में जाकर जज को नमस्कार करनी है...धीमी-सी नमस्कार...जोर से नहीं फेंकनी, ऊंचा नहीं बोलना...फालतू बातें नहीं करनी...फिर जज साहब किसी को कुछ नहीं कहते...जज भी तो आदमी हैं...तुम यूँ ही डर रहे हो...कॉन्फीडेंस लाओ अपने आप में...देहाती लड़के तो दिलेर होते हैं...।’

मुंशी की बातें सुनकर मेरा हौसला बढ़ गया और पूरे ध्यान से मुंशीपना करने लगा।

पूरा साल गुज़र गया था। सारी कचहरी के वकीलों...मुंशियों, जजों, अर्दलियों, प्यादों और अन्य मुलाजिमों-बाऊओं आदि से अच्छी जान-पहचान भी बन गई थी। कई जज तो यह बात भी जान गए थे कि यह मुंशी लड़का कलाकार है, लेखक है। कइयों ने अखबारों में छपी फोटो भी देखी थीं और लेख-रचनाएं भी पढ़ी हुई थीं।

एक जज साहब तो मुझ पर बहुत ही खुश होते, जब मैं उनकी अदालत में जाता। वह मुझसे मेरी कलाकारी के बारे में पूछते और बातें

करते। जब किसी अखबार-पत्रिका में कुछ छपा होता तो मैं उसकी कॉपी जज साहब को दे आता। पंजाबी अखबार उनके घर आते ही थे...

कई बार सुबह वह खुद ही कह देते, ‘भई आज तो तुज्हारी रचना छपी हुई है अखबार में...मैं पढ़कर आया हूँ आज ...वाह...वाह भई।’

जजों के सामने काम करते हुए कचहरी के सारे अर्दली भी मेरे अच्छे जानकार हो चुके थे। जब मैं किसी अर्दली को अदालत के आगे खड़ा आवाज़ लगाते देखता, ‘चलो फलां बनाम फलां हाज़िर हो’ तो मैं सोचता इनकी तो बहुत शान है। ...जजों के पास काम करते हैं...अगर मैं भी इनकी तरह यहां आवाज़ें मारने पर लग जाऊं तो मेरी भी शान बन जाएगी और तनज़्वाह भी पञ्की लग जाएगी।

एक दिन सैशन जज की अदालत के सामने नोटिस चिपका हुआ था, चार अर्दली रखने थे, विनय-पत्र मांगे गए थे। मैंने अर्दली लगने का मन बनाया...वकील साहब और कुछ मित्रों से राय भी ली। विनय-पत्र दज़्तर में दाखिल कर दिया।

इंटरव्यू वाले दिन सैशन जज के दज़्तर के सामने बीस-पच्चीस लोग खड़े थे...सब अर्दली की नौकरी लेने आए थे। खाते-पीते घरों के लगते थे पर बेरोज़गार थे। मैं भी उनमें जा खड़ा हुआ। मेरी बारी आई। मैं अंदर गया। इंटरव्यू के लिए सैशन जज साहब...सीनियर सब जज और सुपरिटेण्डेंट बैठे हुए थे। मैंने दोनों हाथ जोड़कर सभी को एक साथ नमस्ते बुलाई।

सैशन जज साहब मेरी तरफ देखकर बोले, ‘यह लड़का कहीं देखा हुआ लगता है।’

पास बैठे सीनियर सब जज साहब ने कहा, ‘जी हां, देखा तो मैंने भी है कहीं...बेटा, तुम यहां कहीं मुंशी तो नहीं लगे हुए?’

‘हां जी सर...मुंशी हूँ जी...।’

‘तो फिर तुम मुंशीपना करो...आज़ादी वाला काम है...अर्दली

ज्यों लगना चाहते हो?’ सैशन जज साहब बायां कान खुजाते हुए बोले।

‘सर जी...गरीबी है...भाई-बहनों में सबसे बड़ा हूं...घर की आर्थिक हालत बहुत पतली है...।’

मैंने अभी अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि जज साहब ने पूछा, ‘तुम घर के कौन-से काम जानते हो? रोटी वगैरह बना लेते हो? सबसे बड़ी बात तो यही है...रसोई का काम...।’

‘हां जी सर, रोटी भी पकानी आती है...सारे घर के और काम भी आते हैं।’

सीनियर सब जज साहब अपनी ऐनक उतारते हुए बोले, ‘बेटा, इस महकमें में तो ए से ज़ेड सारे काम करने पड़ते हैं...रोटी बनाने से लेकर कपड़े धोने, बर्तन साफ करने, दूध दोहने, चारा डालने, गोबर उठाने, बच्चों को स्कूल छोड़ना-लाना...कोठी और कचहरी में काम करना, छुट्टी-वुट्टी कोई नहीं...रविवार को भी छुट्टी नहीं...।’

‘सर जी, मैं सारे काम कर लूंगा जी...मैं घर में भी करता हूं। माता जी बीमार रहते हैं...काम मैं ही करता हूं।’

‘अगर तुम्हारी माता बीमार रहती है...तुम यहां नौकरी लग गए तो फिर तुम्हारे घर के काम कौन करेगा?’

‘सर जी, मुझसे छोटा भाई है...वो भी सारे काम जानता है...वो कर लिया करेगा।’

सैशन जज साहब का अगला सवाल था, ‘हमारे देश के राष्ट्रपति कौन हैं?’ मैंने ठीक बता दिया। फिर सैशन जज साहब ने नाटकी-सा सवाल किया, ‘बेटा यह बताओ, यहां अपने सीनियर सब जज साहब कौन हैं?’

मैंने कहा, ‘यह देखिए जी, जनाब के साथ ही बैठे हुए हैं।’ सुनकर तीनों हंसने लगे और जज साहब ने कहा, ‘लड़का तो समझदार है।’ यह सुनकर मुझे खुशी हुई थी।

‘अच्छा बेटा, चलो...देखेंगे, फिर चिट्ठी भेजेंगे तुम्हें।’

मैं वकील साहब के पास अपने अड्डे पर आ गया था। दो-अढ़ाई घंटों के बाद सैशन जज साहब का अर्दली हमारे अड्डे पर आया, ‘चल भाई मुंशी, चल, तुम्हें साहब बुला रहे हैं...लगता है तुम्हारा काम बन गया।’

मैं फिर जज साहबानों के आगे हाज़िर था। सैशन जज साहब ने कहा, ‘बेटा, तुम ऐसा करो...अपना टैस्ट दो...सारे काम करके दिखाओ...यह जज साहब हैं...सुबह इनके घर तुम्हें काम करना है...अगर तुम्हारे काम ठीक हुए, फिर देखते हैं...’

‘ठीक है जी सर, धन्यवाद?’

कचहरी में सबको पता चल गया कि मैं अर्दली लग गया हूं। कचहरी में मिलने वाले जानकार आ-आकर बधाइयां देने लगे।

शाम को घर जाकर मैंने माँ-बापू को बताया, सरकारी नौकरी का नाम सुनकर सब खुश हुए थे। मेरी माँ ने सौ-सौ आशीष दीं और बापू भी सिर पलोसता रहा था। हमारे अधपञ्के घर में खुशी पसर गई थी। बापू ने चाव में आकर घर की बनाई शराब का पैग भी लगा लिया था। घर के सारे सदस्य बागो-बाग़ हुए फिरते थे। आज मेरी माँ ने मेरे साग वाली बाटी में दोगुना घी डाल दिया था। हमारे घर में मैं ही पहला था, जो सरकारी नौकरी पर लग रहा था। मैं इंतज़ार कर रहा था, कब रात हो और फिर जल्दी से सुबह हो, मैं जज साहब के घर काम पर जाऊं।

नौकरी पर पहला दिन

दिन चढ़ा। मैं साईकिल पर चढ़ने लगा तो माँ ने गुड़ से मुंह मीठा करवाया और बोली, 'वाहेगुरु तेरा शुक्र है...हमारे घर पर भी अच्छे दिनों की परछाई पड़ने लगी...सच्चे पातशाह सुख देना।'

छह बजते ही मैं साहब की सरकारी कोठी के दरवाजे के सामने जा पहुंचा। अभी दरवाजा नहीं खुला था, सब सोए हुए लग रहे थे। एक टूटा-सा बेंच दरवाजे के आगे पड़ा था, गनमैन वगैरा के बैठने के लिए लगता था। मैं उस पर बैठ गया और दरवाजा खुलने की प्रतीक्षा करने लगा। मेरा ध्यान दरवाजे की ओर ही था कि कब दरवाजा खुले और मैं जाकर जज साहब को नमस्ते बुलाऊं, अपने काम पर हाज़िर होऊं। यह भी डर बना हुआ था कि शायद इन्हें मेरा काम पसंद ही ना आए, फिर ज्यों रखेंगे मुझे!

घंटा गुज़रा। कोठी के अंदर कोई जगा लगा, पर दरवाजा अभी भी नहीं खुला था। मैं उठा, दरवाजे के सामने इधर-उधर घूमने लगा। फिर बेंच पर बैठ गया। बेसब्री-सी का अहसास टिकने नहीं दे रहा था।

अखबार वाला आ गया। मैंने सोचा, अब कोई अखबारें उठाने के लिए आएगा...शायद दरवाजा ही खोल दे, लेकिन कोई अखबारें उठाकर चला गया लगता था। मैं बेंच पर बैठा रहा। कुछ ही देर में दूध वाला आ गया, मैंने सोचा कि अब दरवाजा खुलेगा।

मोटर-साईकिल की आवाज़ सुनते ही साहब का अर्दली अंदर से बर्तन उठाकर बाहर आ गया। यह अर्दली कोठी में ही काम करने के लिए नियुक्त था, मैंने कहा, "भईया, मुझे साहब से मिलना है...मुझे काम पर रखने के लिए बुलाया है।"

"यहीं बैठो, मैं पूछ लूं, तुम्हारा नाम ज़्यादा है...?" वह दूध लेकर

अंदर चला गया। मुझे अब भी धुकधुकी लगी हुई थी कि मेरा काम बनेगा या नहीं...ज्या पता, कोई कोठी के अंदर जाने भी देगा या नहीं, या बाहर से ही लौटा देंगे।

"आ जाओ...साहब बुला रहे हैं।" उसने आकर कहा। मैं उसके पीछे-पीछे चला गया। जज साहब अपने कमरे में बैठे थे। केसों वाली फाइलें देख रहे थे। बीबी जी पास बैठी अखबार पढ़ रही थी।

"सर जी, नमस्ते जी।" मैंने दोनों के पांव छुए।

"हां, भई आ गए तुम? अच्छा बात यह है कि कुछ दिन...बीबी जी ने तुम्हारा टैस्ट लेना है, देखते हैं तुम पास होते हो या नहीं...सारे काम करके दिखाने हैं...ओके...गुड लक।"

"अच्छा जी सर, जो हुज़म जी।"

बीबी मेरी तरफ सिर से पांव तक झांकी और बोली, "अरे किशन इधर आ...इसे रसोई में ले जा...इससे काम करवा सारे...आज ब्रेकफास्ट यही बनाएगा...काम करवाकर देख इससे...।"

अब एक तरह से किशन ही मेरा गुरु था। मैं रसाई में उसके साथ चला गया। डर भी रहा था कि ज़्यादा पता किशन का व्यवहार कैसा हो।

"ये बर्तन साफ कर लो पहले!" किशन ने कहा। रात के जूटे बर्तनों से वॉश-बेसिन भरी हुई थी। छोटू अर्दली भी कोठी के अंदर ही घूम रहा था। छोटू अर्दली को बीबी जी ने कपड़े प्रेस करने के लिए कह दिया था और किशन मुझसे रसोई के काम करवा रहा था। मैं बड़े ध्यान से कूकर साफ कर रहा था कि कहीं ऐसा ना हो कि कोई सज़्जी का किनका लगा रह जाए और किशन बीबी जी को जाकर कहे, 'बीबी जी, इसे तो बर्तन भी साफ करने नहीं आते...इसे नौकरी पर रखकर ज़्यादा करेंगे, घर भेजो...बहुत घूमते हैं इस जैसे...।'

धीरे-धीरे मैंने सारे बर्तन साफ करके ठिकाने पर टिका दिए। किशन ने कांच के गिलास में चाय डाली और कहा, 'लो पहले चाय पी लो।'

“नहीं, मैं तो पीकर आया हूँ गांव से, आप पीयो भईया।”

इतने में रसोई में बीबी भी आ गई थी, ‘पी लो चाय बेटा पी लो...ठंड बहुत है।’

मैंने चाय का गिलास पकड़ लिया, थोड़ी झिझक से पीने लगा। बीबी बोली, ‘आटा गूंध लेते हो? पहले आटा ही गूंधकर दिखाओ आज...’

मैंने चाय वाला गिलास रख दिया, ‘ना-ना...चाय पी पहले...चाय पीयो।’

“किशन इसे परात दे दो...।” बीबी मेरे सिर पर खड़ी थी। मैं परात में आटा छान रहा था। ठंड भी थी...कुछ वैसे भी मैं घबराया हुआ था.. हिलती-हिलती छननी कभी परात में और कभी बाहर हो जाती...आटा नीचे गिर जाता था...बीबी बोली, ‘ध्यान से छानो, आटा नीचे ज्यों गिरा रहे हो...।’

अब आटे में पानी डालना था, मैं डर रहा था कि पानी ज्यादा ना पड़ जाए। पानी डाला गया तो वही बात हुई, पानी ज्यादा डल गया था। आटा पतली कढ़ी जैसा हो गया। बीबी ने कहा, ‘यह ज्यादा कर दिया तुमने...अब सूखा आटा डालो इसमें।’

सूखा आटा डाला और मिलाया। अब ज्यादा सज़त हो गया था। बीबी सिर पर ही खड़ी थी। मैंने पूछा, “बीबी जी थोड़ा-सा पानी डाल लूं इसमें...?”

बीबी खीझी, ‘बस इसी तरह खेलते रहना, कभी पतला कर लिया, कभी गाढ़ा कर लिया...तुम्हें तो आटा गूंधना भी नहीं आता, और तुम ज्यादा...।’

मुश्किल से मैंने आटा गूंध ही लिया। यह सच था कि आटा उस दिन मैंने पहली बार ही गूंधा था और नौकरी लगने के लिए साहब के पास घर के सारे काम आने का मजबूरी और गरीबी के कारण झूठ बोला था।

‘परांटे कौन-कौन से बना लेते हो तुम? मेथी वाले और आलुओं वाले बनाने आते हैं तुम्हें...?’

‘नहीं बीबी जी, मुझे तो गोल रोटियां ही बनानी आती हैं...हमारे गांवों में परांटे तो कम ही बनाते हैं।’

यह सुनकर बीबी भड़क उठीं, ‘लो, हाए हाए...कमाल की बात..., सुन लो भई परांटे नहीं बनाने आते? और तुम्हें ज्यादा आएगा? ...जी गांवों में बनाते नहीं, और ज्यादा बनाते हैं गांवों में...आलू...हाए हाए?’

बीबी को बोलते सुनकर जज साहब भी आ गए, ‘हां, भई कैसा कारीगर है...चलेगा काम या नहीं...?’ बीबी की हाए-हाए ने मेरा दिल पतला कर दिया था।

“चलेगा ज्यादा, कहता है परांटे मुझे नहीं आते...गोल रोटियां आती हैं...लो बताओ, परांटे नहीं बनाने आते...यह ज्यादा काम करेगा यहां।’

बीबी गुस्से में थी। जज साहब बोले, ‘कोई नहीं, कोई बात नहीं कांता...कोई बात नहीं, धीरे-धीरे सीख लेगा बेचारा...कोई बात नहीं...ओए किशन...तुम इसे सारा काम सिखाओ, कोई बात नहीं बेटे, परांटे बनाने कौन-से मुश्किल हैं...सीख लो।’ साहब ने कुछ हौसला-सा दिया था।

छोटू अर्दली भी पास आ गया था, वह इस बात से खुश दिखाई दे रहा था कि नया आदमी आया है, अब सारा काम यही किया करेगा। उसे जैसे कुछ घंटे खाली रहने से ही काफी तसल्ली मिली थी। लगता था जैसे छोटू कामों का मारा हुआ था।

जज साहब और बीबी कोठी के पिछवाड़े सड़क पर सैर के लिए निकल गए। साहब का लड़का अभी सोया हुआ था। किशन मुझे अपनी कहानी बताने लगा, ‘जब मैं नौकरी लगा था तो ऐसे ही पास हुआ था, सारे काम खुद ही आ जाएंगे...डरने की कोई जरूरत नहीं...तुम्हारी नौकरी लग जाएगी पक्की...सारी उम्र मौज करोगे...।’

पास खड़े छोटू ने कहा, 'काम की ज़्या बात है, सब आ जाएगा अपने आप...हम सिखाएंगे काम...।' छोटू मुस्कराया।

मैं और हौसले में हो गया।

मैं टेढ़े-मेढ़े परांठे बना रहा था, परांठा सीधा करने में छोटू और किशन भी मदद कर रहे थे। बीबी और जज साहब ब्रेकफास्ट करने के लिए मेज के आस-पास आ बैठे, साहब ने कहा, 'हां भई बेटे, लाओ भई ज़्या बनाया है?'

साहब और बीबी खा रहे थे, छोटू दे रहा था, 'ठीक है, धीरे-धीरे ट्रेड हो जाओगे बच्चे...।' साहब ने कहा।

जज साहब कचहरी जाते समय बोले, 'बेटा, सारा काम ध्यान से करना...जो नहीं आता, छोटू और किशन से समझना...ठीक है? रोटी, पानी, चाय, जो चीज़ चाहिए, यहीं से खाना...अच्छा?'

छत पर धूप आ चुकी थी। बीबी अखबार लेकर धूप सेकने ऊपर जा बैठी, ऊपर से ही आवाज़ दी, 'किशन इससे काम करवाओ सारे...खाली बातें ही मत करते रहना...बाड़ी में काम कर लो।'

छोटू से सारे कपड़े प्रेस नहीं हुए थे, 'लाओ यार मैं करूं कपड़े प्रेस।' मैंने प्रेस पकड़ी, किशन पास बैठ गया। छोटू रद्दी वाले बिखरे हुए अखबार इकट्ठे करने लगा। जज साहब का लड़का उठ गया था। वह हमारे पास आ गया। उसके हाथ में पंजाबी ट्रिज्यून अखबार था। आते ही उसने हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाया, मैं झिझक गया। वह जज का लड़का था और मैं चपरासी था, वह भी अभी कच्चा था! खैर, उसने हाथ मिलाया और बोला, 'और ज़्या हाल है, ठीक चल रहा है? नया-नया होने के कारण अजनबीपन लग रहा होगा...।'।

वह हमारे पास कुर्सी पर बैठकर अखबार पढ़ने लगा। मैंने देखा, बड़ी गौर से वह कोई कहानी पढ़ रहा था। अखबार में 'कहानी अंक' उस दिन छपा हुआ था। मैंने लपककर कहानीकार का नाम देखना

चाहा, वह बोला, 'पढ़ोगे तुम...?'

'नहीं जी, मैंने तो यूं ही देखा है...कहानी किसकी लिखी हुई है? बहुत अच्छी कहानियां छपती हैं इसमें।'

लड़का बोला, 'वरियाम संधू की लिखी है कहानी...मैं इसकी लिखी पढ़ता हूं, इसमें बहुत छपती हैं।'

लड़के की यह बात मुझे बड़ी अच्छी लगी कि पंजाबी पढ़ता है और कहानियों का पाठक है। जब उसने बैठे-बैठे पूरी कहानी पढ़ ली तो मुझसे भी रहा ना गया।

मैंने पूछा, 'ज्यों भाई साहब, अच्छी लगी कहानी?'

'हां यार, बढ़िया है...मैं तो संडे के भी सारे पेपर पढ़ता हूं, लिटरेरी होते हैं...।'।

'भाई साहब, आप साहित्यिक पुस्तकें भी पढ़ा करो...मैं लाकर दूंगा आपको पुस्तकें।'

'मैं पढ़ता हूं किताबें, पढ़ी हैं ऊपर मेरे कमरे में...मैं तो 'नागमणी' भी लेता हूं, पिछली बार का मिला नहीं, खत्म हो चुका था, अमृता मुझे अच्छी लगती है...बहुत अच्छा लिखती है...तुज्हे भी शौक लगता है लिटरेचर पढ़ने का?' बातें करते हुए उसने मुझसे सवाल कर दिया था।

'हां जी, पढ़ने का भी शौक है और लिखने का भी, गाने का भी...मैं अखबारों, पत्रिकाओं में भी लिखता रहता हूं...एक किताब भी छपी है, अभी थोड़े दिन पहले ही रिलीज़ हुई है। संडे को भी छपता है मेरा अखबारों में...रेडियो और टीवी पर भी जाता रहता हूं मैं।''

मेरी बातें सुनकर लड़के का जैसे चेहरा चमक उठा, 'अच्छा यार, कमाल है...मुझे भी बड़ा शौक है कल्चरल एजिटिविटी का...तुज्हार नाम ज़्या है?''

जब मैंने अपना नाम बताया तो वह कुर्सी से उछल पड़ा, 'लो यार, कमाल है, मैंने नाम तो तुज्हार बीस बार पढ़ा है अखबार में।''

उसने खुशी-खुशी फिर मेरे साथ हाथ मिलाया था। अब मेरी खुशी और भी बढ़ गई थी।

“यार तुम कैसे आ गए ऐसे कामों में...हूँ? तुम माने हुए साहित्यकार हो और अर्दली लग रहे हो?”

लड़का हैरान हो रहा था। मैं जज साहब की सफेद कमीज़ पर प्रेस चला रहा था। लड़का मेरी बांह पकड़कर बोला, “छोड़ यार, किशन तुम करो कपड़े खुद, आओ यार तुम, चलो तुम्हें किताबें दिखाऊँ, चलो।”

मैं उसके पीछे-पीछे सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। लड़के ने अपनी माँ से कहा, “मज़मी यह तो लेखक है...यह तो अखबारों में भी बहुत छपता है...मैंने पहले भी पढ़ा, यह बेचारा यहां कहां आ गया...इसके ज़्या टैस्ट लेने हैं, कीजिए इसे पास...”

“हां, लगता तो समझदार है, किशन के साथ काम करवा दिया करेगा...जज साहब को कहकर पज़के ऑर्डर करवा देते हैं...धीरे-धीरे सीख जाएगा काम सारे। काम यहां हैं भी कौन-से? छोटे-छोटे काम हैं।”

बीबी के यह बोल मेरे दिल में बहुत ही खुशी भर रहे थे। लड़के से मिलकर तो खुशी हुई ही थी, मैं तो अभी छोटी उम्र का उभरता लेखक कलाकार था, छोटा-सा, यह लेखकपना मेरा यहां कितना मददगार साबित हो रहा था।

लगभग चार दिनों बाद मेरी नौकरी के ऑर्डर हो गए। मुझे किशन ने बताया कि जाओ, जल्दी करो, दज़्तर से आदेश ले लो जाते-जाते। नियुक्ति पत्र लेने के लिए मैं कचहरी गया, सुपरिंटेंडेंट ने संबंधित ज़्लर्क से नियुक्ति पत्र लेने को कहा। मैंने एक रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये और नियुक्ति पत्र प्राप्त कर लिया। उस चिट्ठी को मैंने बड़ी कीमती शै समझकर हाथों में पकड़ा हुआ था। नज़दीक ही सिविल

अस्पताल में मैडीकल करवाया और तुरंत ही हाज़िरी रिपोर्ट दे दी। अब मुझे पूरी तसल्ली का अनुभव हो रहा था, आज से मैं ‘सरकारी बंदा’ बन गया था। मेरा वेतन लग गया था आज से।

मेरे ऑर्डर जज साहब द्वारा सिफारिश करने पर ही हुए थे। जज साहब ने अपनी ओर से रिपोर्ट की थी, लिखा था, “यह लड़का घर के सारे काम तसल्लीबख़श जानता है...नौकरी पर रखने के योग्य है, इसलिए इसके नियुक्ति आदेश कर देने चाहिए।”

जज साहब ने यह रिपोर्ट ज़िला और सेशन जज साहब को लिखकर भेजी थी। इस पर जल्दी ही अमल हो गया।

कचहरी से सीधा मैं साहब की कोठी की ओर चल पड़ा। साहब का लड़का रिकू बोला, “बधाई हो भई लेखक दोस्त, तुम्हारी नौकरी लग गई, तुम लेखक होकर भी अर्दली लगे हो, मुझे इस बात की हैरानी-सी हो रही है।”

बीबी ने कहा, “बेचारे को मुश्किल से रोज़गार मिला है, शुक़र करे भगवान, तुम अब इसका मुंह मीठा करवाओ।”

रिकू अंदर से बर्फी का डिब्बा उठा लाया, सभी बर्फी खाने लगे।

किशन अर्दली कह रहा था, ‘ज्यों भईया, मैंने कहा था ना, आपका काम बनने वाला है, बन गया काम। चलो अच्छा हुआ, अब हमारा साथी पज़का हो गया।’

रिकू बोला, “तुम्हारा साथी नहीं, मेरा है।”

किशन ने कहा, “भईया, आप कौन-सा यहां रोज़ होते हो, फिर तो मेरे पास ही रहा करेगा...मेरा साथी हुआ ना।’ सभी हंस रहे थे।

रिकू यूनिवर्सिटी में पढ़ता था और हज़्ते या दस दिनों बाद माँ-बाप को मिलने आता था। अच्छी किताबें और पत्रिकाएं वह हमेशा साथ रखता। उसकी यह लगन मुझे अच्छी लगती थी। वह पंजाबी ज़बान का प्यारा पाठक था।

अदालत में हंसी

दूसरे दिन सुबह रिकू अखबार उठाए मेरे पास आया, “ओ यार, आज तो तुम्हारे सिर पार्टी हो गई...यह देखो, छाए हुए हो तुम।”

‘पंजाबी ट्रिज्यून’ अखबार था। रिपोर्ट समेत फोटो छपी हुई थी। फोटो में भारत के पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह मेरी पुस्तक ‘तूंबी दे वारिस’ (जो उस्ताद लाल चंद यमला जट्ट के शागिर्दों के बारे में लिखी हुई थी) रिलीज कर रहे थे, साथ मैं खड़ा था, जिले के डिप्टी कमिश्नर, पुलिस कप्तान और कई मंत्री भी खड़े थे। यह रिपोर्ट पुस्तक रिलीज समारोह की थी। जो कुछ दिन पहले सर्किट हाऊस में हुआ था।

जज साहब ने भी रिपोर्ट पढ़ी। रिकू ने कहा, “चलो अंदर, डैडी जी बुला रहे हैं तुम्हें।” मैं साहब के पास कमरे में गया। रिकू भी मेरे साथ था, “ओ बेटे तुम तो बड़े गुणी हो...तुम आगे और पढ़ाई कर लो...अब तुम्हारा नौकरी वाला काम तो हो ही गया...पढ़ाई तुम्हारे काम आएगी...सारी उम्र अर्दलीपना थोड़े करते रहोगे तुम...तरज्की करके बाबू बन जाओगे?”

रिकू ने कहा, “डैडी जी, यह देखो, राष्ट्रपति के हाथ से किताब रिलीज करवा रहा कैसे खड़ा है शान से और यहां अर्दली लगा फिरता है...यह सब पेट का मसला है। मैं तो खुद इसे कह रहा हूँ, यह आगे और पढ़े और अच्छी नौकरी लगे।”

बाप-बेटे की यह राय बहुत ठीक थी। यही राय मुझे पहले भी कईयों ने दी थी, पर मैंने अमल नहीं किया था। बेरोजगार घूमते हुए पहले मुंशी और अब अर्दली का काम मिला था। अब मैं इस राय पर अमल भी करना चाहता था। मैं और पढ़ना और आगे तरज्की करना चाहता था।

मैडम जी कभी कोई काम नहीं कहती थी। रसोई और बाकी सारा काम-धंधा किशन और छोटू ही करते थे। अगर कहीं बाजार से कोई चीज लाने की जरूरत होती तो मैं साइकिल उठाता और ला देता या दोपहर को जज साहब का खाना लेकर कचहरी चला जाता था।

एक दिन मैंने रिकू से कहा, “रिकू, आप लोग मुझसे काम तो कोई लेते नहीं, खाली बिठा देते हो...अगर ऐसा हो जाए कि मैं सुबह से शाम तक साहब के पास कचहरी में काम किया करूं और शाम को कोठी आ जाया करूं...मैं कचहरी का काम भी सीख लूंगा...यह ठीक नहीं रहेगा?”

अगले दिन से ही मैंने साहब के साथ कचहरी जाना शुरू कर दिया। अदालत में साहब के साथ पहले भाना अर्दली काम कर रहा था। साहब ने भाने को मेरे पास खड़ा करके कहा, “अरे भाने, इस लड़के को आवाज मारना सिखाओ, आज यह आवाजें लगाएगा...और सारे दज्तर के काम भी इसे बता दो।”

मैं अदालत के सामने आवाजें लगा रहा था, “चलो भई फलां बनाम फलां हाजिर हो।” आवाज देकर मैं फिर जज साहब के सामने आ खड़ा होता। जज साहब अगले केस की फाइल उठाते और नाम पढ़कर मुझसे कहते, “चलो भई बेटे, यह आवाज लगाओ अब।”

भाना लंगड़ा मेरी हाजिरी के कारण जल-भुन गया था पर साहब का हुज्म तो उसे मानना ही था। वह पेशी पर आने वाले लोगों से पैसे उगाहता था। कहता था, “लाओ निकालो यार दस का नोट...मैं तुम्हारा नाम पहले बुलवा देता हूँ।” इस तरह वह पैसे बटोरता जाता, आवाज तो साहब की हाजिरी में और साहब की मर्जी अनुसार या लिस्ट के नंबरों के अनुसार ही लगनी होती थी या फिर रीडर और स्टैनो की भी बीच-बीच में मर्जी चल जाया करती थी, पर भाना लंगड़ा अपना दाव बाहर से ही लगा लेता था।

शाम तक नोटों से जेब भर जाती थी उसकी। वह बहाने से

गुसलखाने में जाता और दस दस के नोट कमीज़ की आगे वाली जेब से निकालकर तह लगाता और पैंट की पिछली जेब में रख लेता...वह डरता था, कहीं साहब पूछ ही ना लें यह इतने पैसे कहां से लिए फिरते हो। मुझ पर वह इस बात से भी खीझने लगा था कि नया लड़का अब मेरी जगह ले रहा है...आने वाले समय में मेरी आसामियों से पैसे लिया करेगा और कहीं साहब को ही मेरे बारे में उलटी-सीधी जोड़-जोड़कर ना बताया करे।

जब कहीं भाना लंगड़ा मुझ पर खीझता तो मैं आगे से हंसकर दिखा देता तो वह और खीझ जाता...बड़बड़ाता रहता...जब वह टेढ़ी टांगें मारकर चलता तो सारा हिलता...जोकर-सा लगता।

एक दिन अदालत में ही बड़ा हास्य का-सा माहौल बन गया था। हुआ यूं कि मैंने आवाज़ लगाई। कोई था बूढ़ा, उसने हरद्वार सिंह संधू वकील किया हुआ था। वह बूढ़ा आवाज़ सुनते ही जज साहब के सामने जा हाज़िर हुआ। साहब ने कहा, “चलो बाबा, लाओ अपने वकील को...कौन है तुज़्हारा वकील?”

बूढ़ा डरता हुआ बोला, “हुज़ूर मैं तो वकील साहब का नाम ही भूल गया हूं...फलां जी...याद नहीं आ रहा...।”

जज साहब चुप रहे, दो मिनट के बाद फिर पूछा, “कौन है वकील तुज़्हारा?”

बूढ़ा हाथ जोड़कर बोला, “हुज़ूर...पूरा नाम तो अभी भी याद नहीं आया, ...वैसे जहां फूल डालने जाते हैं...”

पास खड़ा एक वकील बोला, “हरद्वार संधू है जी।”

सभी, वकील, मुंशी और लोग हंसने लगे। बूढ़ा अपने वकील हरद्वार सिंह संधू के अड्डे की ओर उसे बुलाने जा रहा था। जज साहब की हंसी उनके रोकने पर भी नहीं रुक रही थी।

जज साहब की भी बदली हो गई

कचहरी जाते हुए कुछ दिन ही हुए थे कि एक दिन जज साहब ने कहा, “तुम कोठी में ही काम किया करो...कोठी के काम के लिए रखे गए हो...कचहरी में आवाज़ें लगाने और बाकी कामों के लिए पुराने अर्दली हैं।”

साहब ने यह बात बड़े अच्छे ढंग और प्यार से कही थी।

मैंने देखा कि नए-नए भर्ती हुए अर्दलियों की कई-कई साल कोठियों में ही रगड़ई की जाती है। अफसरों की सज़्जत स्वभाव वाली बीवियां नए अर्दलियों को निखट्टू और ढीठ बना देती हैं। खूब डांटती हैं और इसी तरह रामू और बहादुर सिर पर चढ़ जाते हैं। ‘कहना मोड़ना नहीं, पज़ा तोड़ना नहीं’ वाली कहावत के धारणी बन बैठते हैं। खैर!

मैं सारा दिन कोठी में ही रहता था। कई बार कुछ लिख रहा होता तो किशन अर्दली सिर चाटने लगता, “भाई, तुम यह कहानियां लिखते हो, इसका कुछ फायदा भी होता है...यह कहानी पहले आपको याद होती होगी...तभी लिखते हो या जोड़-जोड़कर लिखते हो...?”

मैं इधर-उधर की बातों से किशन के सवालियों के जवाब दे देता।

एक दिन बीबी ने रहस्य खोला, कहने लगीं, “कचहरी के लिए तुज़्हे सेशन जज ने ही मना किया है...उन्होंने अपने जज साहब को कहा है कि इससे अभी कोठी में ही काम लो और घर के कामों में पूरा-पूरा ट्रेंड करो...इतनी जल्दी कचहरी में ज्यों ले आए...तभी अपने जज साहब ने तुज़्हे कोठी भेजा है।”

‘बीबी जी, मुझे तो काम करना है...कोठी में हो या कचहरी में...जैसा हुज़्म होगा, करता जाऊंगा।’

रिंकू यूनिवर्सिटी से आया। बहुत खुशी से मिला। सुरजीत पाज़र की किताब बैग से निकालता हुआ बोला, “यह देखो, कल ही ख़रीदी है...तुमने तो पहले ही पढ़ी होगी...अब मैं पढ़ूंगा।”

रिंकू में अकड़ बिल्कुल नहीं थी। यह अच्छी बात थी कि एक बड़े अफसर का लड़का साहित्य और कलाओं की ओर रुचित था...नहीं तो आमतौर पर देखने में आता है कि बहुत बड़े अफसरों के लड़के-लड़कियां बिगड़े हुए होते हैं...साहित्य और कलाओं से दूर का वास्ता भी नहीं रखते। फिर पंजाबी साहित्य के साथ? सो...यह बात बड़ी अच्छी थी कि रिंकू का साहित्य के साथ नज़दीकी लगाव था। बड़ी बात यह कि लड़का हो जज साहब का और यार बनाए एक अर्दली को?

रविवार था। साहब आज घर में ही थे। आंगन में कुर्सियां लगाकर धूप सेकने लगे। बीबी भी पास बैठी थी। साहब कहने लगे, “निंदर बेटे, इस बार की बदलियों में मेरी भी बदली होगी...हमें यहां तीन साल हो गए हैं...हमारे बाद तुम जिस भी जज साहब के पास काम करोगे, अच्छी तरह करना। नौकरी पज़्की है हटाते नहीं...अब कचहरी में थोड़ा समय रुककर ले जाएंगे...उतनी देर कोठी में रहना पड़ेगा तुम्हें। हमसे जितना हो सका, तुम्हारा भला किया...आगे दूसरा अफसर भी अच्छा ही मिलेगा...यह कोई गारंटी नहीं होती...और सारे अफसर एक जैसे भी नहीं होते...बाकी तुम समझदार हो...जैसे भी हो, समय निकालते जाना अपना।”

जज साहब की बदली होने वाली बात मुझे उदास कर गई थी। बदलियों में अभी तीन महीने से ज़्यादा का समय था पर साहब ने मुझे पहले ही बताकर चिंता में डाल दिया था।

बीबी जी ने कहा, “तुम्हारी बदली यहां से हो नहीं सकती...नहीं तो हम तुम्हें अपने साथ ही ले जाते...चलो, वैसे हमें मिलने आ जाया करना...रिंकू तुम्हारा दोस्त है।”

एक दिन सुबह अख़बार देखा। जजों की बदलियों के सूचि छपी हुई थी। साहब का नाम भी शामिल था। बदली हमारे शहर से ज़्यादा दूर नहीं हुई थी, पास ही हुई थी। बस में डेढ़ घंटे का सफर था। मुझे इस बात से भी हौसला हुआ कि चलो नज़दीक ही है...जब मन करेगा, जाकर मिल आया करूंगा।

दो दिनों बाद साहब अपनी नई जगह पर जाने की तैयारी करने लगे। ट्रक पर लदवाने के लिए सामान संभाला जाने लगा। सामान ढोने के लिए कचहरी से और प्यादे और अर्दली भी आए हुए थे। साहब का नाज़र (दज़्तरी बाबू) ट्रक का प्रबंध करके लाया था। सारा सामान लाद दिया गया था।

मेरा उतरा हुआ चेहरा देखकर जज साहब फीका-सा मुस्कराए। बीबी जी ने कहा, “आज तो तुम हमारे साथ ही चलना...मुंह ज्यों लटकाए फिरते हो, वहां रिंकू भी आएगा, वह सीधा आएगा...उसे भी मिल आना...साथ जाकर सामान पहुंचा आना।”

मैं ट्रक की अगली तरफ बैठा हुआ था...साथ दो प्यादे और भी जा रहे थे। बीबी जी और जज साहब कार में थे। ट्रक के पीछे-पीछे कार धीरे-धीरे आ रही थी।

टिकाने पर पहुंचे। यहां से जो जज बदला था, अभी दो दिन पहले ही कोठी ख़ाली करके गया था। साहब और बीबी जी ने उतरकर पहले सारी कोठी में घूमकर देखा। मैं भी साथ-साथ घूम रहा था। सामान उतारा गया, अभी उतारकर बैठे ही थे कि रिंकू भी कंधे पर बैग लटकाए आ गया। दूसरे सारे अर्दलियों को उसने नमस्ते बुलाई थी और मुझे वह गले मिला था, “ओए निंदरा, तुम भी आए हो।”

रिंकू खुश था। दूसरे अर्दलियों, ट्रक वालों और मैंने भी अब वापस लौटना था ज्योंकि अब वहां की कचहरी के मुलाजिम साहब का सामान टिकाने के लिए हाज़िर हो गए थे। रिंकू कह रहा था,

“निंदर...तुम मत जाओ, मैं तो तुम्हारे लिए दो किताबें लाया हूँ, यह देख।’

उसने बैग से शिव की ‘लूणा’ और ‘मेरा दागिस्तान’ किताबें निकालीं। मेरा नाम लिखकर और नीचे अपने दस्तखत करके मुझे भेंट कर दीं।

जज साहब ने भी कह दिया, “तुम सुबह जाना...आज तो रहना पड़ेगा...रह लो।”

शाम हुई, मैं और रिकू बाज़ार निकल गए।

अब मुझे यह चिंता सताने लगी कि अगला जज और बीबी-बच्चे कैसे मिलेंगे...कोई तंग करने वाले ही ना आ जाएं।

सुबह रिकू मेरे रोकने के बावजूद जिद से मुझे बस में चढ़ाने आ गया था, मैंने बहुत रोका था पर वह मेरा दोस्त था। मैं बस की आगे वाली सीट पर उदास-सा बैठा था। बाहर खड़े रिकू का चेहरा भी उतरा हुआ था। उसकी भेंट की हुई किताबें मैंने गोद में रखी हुई थीं।

बस चल पड़ी थी। हमने एक-दूसरे को टा-टा बुलाई और उदासी से मुस्कुराए थे।

*

नए साहब की सेवा में

बीच वाले दो दिन मुझे गांव रहने को मिल गए थे। साहब, बीबी जी और रिकू याद आते रहे थे। चिंता सताती रही कि अगले जज साहब पता नहीं किस तरह के होंगे।

कचहरी आने पर पता चला कि आज नए जज साहब ने आना है और सेशन जज साहब के पास जॉइनिंग रिपोर्ट देनी है। नया साहब रात को ही रेस्ट-हाऊस में आकर ठहर गया था। झिझकता हुआ अंदर गया और सत श्री अकाल बुलाई। साहब के पास सुपरिटेण्डेंट बैठा हुआ था। उसने साहब को बताया, “सर जी, यह आपका सेवादार है...निंदर कुमार।”

“अच्छा-अच्छा।” साहब ने मेरी ओर देखा...मैंने दोनों हाथ जोड़े। लंबे और पतले सरदार, दाढ़ी पर जाल चढ़ाया हुआ...सफेद ऐनक, सफेद पैंट शर्ट, काला कोट और काली टाई लगाई हुई थी। साहब कचहरी जाने के लिए तैयार थे। साहिब अभी अकेले ही आए थे। सामान वगैरह और बीबी जी को अभी लाना बाकी था।

“कितनी देर सर्विस हो गई तुम्हारी?”

“सर, चार महीने ही हुए हैं, नया लगा हूँ।” डरते हुए कहा।

“किसने लगवाया?”

“जनाब...पहले वाले साहब जी ने...वही मेहरबान हुए।”

“काम सारे जानते हो, रोटी, दूध दोहना, खेती की गुढ़ाई?”

साहब मेरी ओर सफेद ऐनकों में से आंखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। सारे सवालियों के जवाब जैसे एक ही सांस में मांग रहे हों।

मैंने “हां जी, सर जी...” कहा।

जज साहब की आवाज़ रौब वाली थी। जिस तरह वह पूछताछ

कर रहे थे, उससे ऐसा लगता था जैसे वह स्वभाव के गर्म और जल्दबाज़ हैं। और मैं पहली बार ही तो मिल रहा था, वास्ता तो अभी पड़ना था। पर पहली बार ही ऐसा लग रहा था कि...कसर पूरी करने वाले साहब हैं।

स्टैनो और रीडर भी आ गए। सुपरिंटेंडेंट ने उनकी भी जान-पहचान करवाई। साहब की ओर से बैठने का इशारा होने पर वे एक तरफ़ सोफों पर बैठ गए। मैं सामने खड़ा अगले हुज़्म की प्रतीक्षा कर रहा था।

“अच्छा फिर अब तुम खाली ही हो...मैं तो आज वापस लौटूंगा...अभी आने में तीन-चार दिन लग जाएंगे...मैं कोठी देख आया हूँ...वहां सफाई वगैरह करो उतने दिन...”

“अच्छा जी सर।” मैं साहब के पांव छूकर बाहर आ गया।

कोठी बहुत बड़ी थी, महाराजा के बड़े रैस्ट हाऊस को तीन हिस्सों में बांटा हुआ था और ये हिस्से जजों के रहने के लिए कोठियां बन गए थे।

किशन अर्दली मुझसे पहले ही साहब के दर्शन कर गया था। साहब ने उससे भी यही कहा था, “कोठी की सफाई वगैरह करो...”

किशन का घर साहब की कोठी के पास ही था। मैंने साइकिल किशन के घर की ओर मोड़ लिया। वह घर के बाहर ही खड़ा था, बोला, “ज्यों? मिल आए साहब को...मुझे तो नए साहब का कुछ नहीं लगता...अजीब-सा लगता है अड़ब-सा...चलो हमने ज़्या लेना, काम ही तो करना है, कर लेंगे...जैसा भी हुआ, ठीक है।”

किशन ने स्वीपर को कहकर कोठी के कमरे और बरामदे साफ करवाए। मेरे करने के लिए कोई काम नहीं था। सुपरिंटेंडेंट ने मुझे अपने पास बुलाया और कहा, “जितने दिन तुम्हारे साहब नहीं आते...उतने दिन तुम मेरे पास ड्यूटी कर दिया करो।”

मैं तीन दिन गया। चौथे दिन सुबह सुपरिंटेंडेंट ने कहा, “ओ बेटे, आज तुम्हारे साहब आ रहे हैं, सामान भी आ रहा है...उनका फोन आया था, तुम कोठी चलो। वहां जाकर देखो काम...आने वाले ही होंगे साहब तुम्हारे, चलो भाग जाओ कोठी...”

किशन कोठी में पहले ही टहल रहा था, “अरे आ जा, आज आ रहा है साहब...पता है तुम्हें?”

करने वाला काम भले ही कोई नहीं था, मैं और किशन प्याज़ों की ज़्यारियों से सफेदों के पजे चुनने लगे। किशन ने बात शुरू की, “मेरी नौकरी हो गई है सात साल की...हमने ना किसी का रौब सहा है, ना सहेंगे...तीन-चार जज मेरे सामने गए हैं, अगर अफसर बुरा हुआ, तो हम बुरे नहीं हुए। हम अच्छे ही रहे हैं...कोई कुछ करता रहे...अफसर का ज़्या है, कभी नरम, कभी गरम...मैं तो तुम्हें यही कहता हूँ कि अपने काम पूरे रखो, बाकी इनकी औरतों ने तो अपनी इधर-उधर की मारते रहना है...बीबियां तो सारा दिन टोकने और गलतियां निकालने के लिए बैठी रहती हैं...पहले वाली बीबी जी भी जब आई थी तो छोटी-छोटी बात पर खीझती थी...हम सीधे रहे, वह भी अपने आप सीधी हो गई। वैसे अच्छे थे जज साहब भी, रिंकू भी तुम्हारा दोस्त बन गया था...अपने साथ तो बेचारे अच्छे ही रहे हैं।”

शाम होने से पहले साहब आ गए। सामान भी आ गया। कचहरी से और प्यादे और अर्दली सामान उतारने के लिए बुलाए गए। रीडर, स्टैनो तथा अहलमद भी आए हुए थे। साहब अकेले ही आए थे। साथ घर का कोई और सदस्य नहीं था। कार का ड्राइवर और गनमैन कार को कोठी के अंदर खड़ी करके वापस अपने ठिकाने पर जाने के लिए बस में चढ़ गए। यहीं से साहब के पास दो नए गनमैन आ जाने थे...जो अपने गांवों को गए हुए थे। कारें तो सरकारी ही थीं, जो पहले थीं, बारी-बारी से सभी जजों को घर से लेने और छोड़ने का काम करती थीं।

रीडर और स्टैनो भी साहब से आज्ञा लेकर अपने अपने घर चले गए। मैं और किशन रसोई के काम में लगे हुए थे। साहब कुर्ता-पायजामा पहनकर फुलवाड़ी में टहल रहे थे।

किशन धीरे से बोला, “भाई, अच्छा नहीं लग रहा यह...अड़ब मुर्गा-सा लगता है।”

“अरे बेवकूफ, अभी-अभी तो आया है...धीरे-धीरे ही पता चलेगा...अपने साथ इतनी जल्दी कैसे खुल जाए? फिर भी जज है...तुम नहीं समझते बात को...।”

थोड़ी देर में साहब हमारे पास ही आ गए, “फुलवाड़ी तुम्हारी अच्छी है...बहुत सज्जियां लगाई हैं...कौन करता है बाड़ी में काम?”

“हम दोनों ही करते हैं...कभी यह कभी मैं जी।” मैं बोला था।

“तुम कहां से हो?”

“सर, मेरा गांव पास ही है जी।”

“तुम किशन कहां रहते हो?”

“मेरा तो सर क्वार्टर है सरकारी...वो दूसरी तरफ वाली लाईन में।”

“अच्छा...तुम गांव जाते हो रोज...?” साहब ने मुझसे पूछा।

“हां जी सर...रात को आठ बजे जाता हूं...ग्यारह-बारह किलोमीटर है...साइकिल पर कोई देर नहीं लगती जी।”

“अच्छा-अच्छा।” कहकर साहब अपने बैडरूम की ओर चले गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने मुझे स्वयं ही कहा, “तू चला जा अब...रात हो गई...सुबह कितने बजे आओगे तुम?”

“सर जी, हुज्म दो...”

“तुम आकर ब्रेकफास्ट बनाना...चाय सुबह किशन बनाएगा...तुम जाओ अब।”

मैंने साइकिल उठाई और चल पड़ा। सोच रहा था कि अब तो साहब अच्छा-अच्छा लग रहा है, खुद ही घर भेज दिया मुझे। साहब

की आवाज़ वैसे ही भारी है। ऐसे तो कई आदमियों की आवाज़ प्राकृतिक तौर पर होती है। साहब की भी ऐसे ही होगी...जिन व्यक्तियों की आवाज़ भारी हो, उनका स्वभाव बहुत अच्छा होता है...ऐसा ही साहब का होगा।

अपने आप से बातें करता हुआ मैं काफी रात गए घर गया।

साहब को सुनाई तूंबी

तूंबी बजाने या कुछ लिखने-पढ़ने का अब कोई वज़त नहीं मिलता था। वैसे मन बहुत करता था कि तूंबी बजाऊं और ऊंची-ऊंची हेक लगाकर गाऊं। कभी-कभी मुझे लगता, जैसे मेरी तूंबी मेरे साथ नाराज़ हो गई है...मेरी कलम मुझसे छीन ली गई है। मेरा इकतारा और मेरी कलम मुझसे दूर कहीं किसी जंगल की ओर चले गए हैं।

अफसर किस्म के ज़्यादातर लोग साहित्य और कलाओं वाले लोगों को फिज़ूल सी बातें समझते हैं, अफसर लोगों को कला से कोई प्यार या लगाव नहीं होता। यह बात मैं भलि-भांति समझता था और इसलिए मुझे अपनी कलाकारी या साहित्यकारी जज साहब के सामने घोटते फिरने का कोई फायदा नहीं था और ना ही मैं इसके बारे में जज साहब को कुछ बताना चाहता था।

रविवार था। शहर में साहित्य सभा की एकत्रता थी। मैं वहां जाना चाहता था। इस सभा की मीटिंगों और समारोहों में मैं बहुत वर्षों से आता-जाता था। यहां लेखक इकट्ठे होते...एक-दूसरे से मिलते, चाय पीते और फिर मिलने का इकरार करते घरों को लौट जाते। मैंने किशन से कहा, “यार आज काम इतना है नहीं...मैं साहित्य सभा की मीटिंग में जाऊं?”

“वहां जाकर ज़्या करते हैं, मुझे भी बताओ...तुम पहले भी वहां जाते हो हर महीने...।”

मैंने बताया, “वहां लेखक इकट्ठे होकर अपनी-अपनी रचनाएं पढ़ते हैं...फिर उन पर विचार-चर्चा करते हैं...तुम्हें भी कभी दिखा देंगे, साहित्य सभा की मीटिंग...आज मुझे जाने दो...जाऊं?”

“जाने को तो जाओ...मगर साहब से पूछकर जाओ...मेरी ओर से तो छुट्टी है।”

जज साहब से तो पूछना पड़ता। वह अपने बैडरूम में थे। मैंने जाकर अर्ज किया, “जनाब जी, मुझे दो घंटे के लिए जाना है...यहां हमारी साहित्य सभा की मीटिंग है...।”

“तुम वहां जाकर ज़्या करोगे? पहले भी जाते हो या पहली बार जा रहे हो...?”

“हां जी सर...पहले भी जाता हूं जी...शौक है जी मुझे वहां जाने का...सर जाऊं?”

“जाओ चले जाओ...जल्दी लौटना।”

साहब से छुट्टी मिल गई और मैं साहित्य सभा की मीटिंग में खुशी-खुशी गया। रचनाएं सुनीं, मैंने कुछ ना सुनाया। लेखक दोस्त मिले। मीटिंग खत्म होने पर सीधा कोठी आ गया। साहब ने पूछा, “अरे तुमने वहां ज़्या किया आज?”

“सर जी, वहां लेखक आए, मुझे भी कुछ ना कुछ लिखने-पढ़ने और सुनने-सुनाने का शौक है...तभी तो जाता हूं जी।”

“मुझे तो यह भी पता चला है कि तुम गा लेते हो।” साहब मुस्कराए।

हुआ यूं था कि मेरे जाने के बाद किशन ने साहब को सबकुछ बता दिया था। मेरी तूंबी के बारे में भी।

“ज़्या गाते हो भई निंदर तुम? तूंबी पर गाते हो?”

“हां जी सर, तूंबी पर...तूंबी मुझे मेरे गुरु उस्ताद लालचंद यमला जट्ट जी ने दी थी...मेरे पास है...गांव रखी हुई है घर में।” मैंने कुछ उत्साह से बताया।

“अच्छा, कल लेकर आना तूंबी...तुम्हारा गायन सुनेंगे।”

मुझे इस बात की कुछ-कुछ तसल्ली हुई थी कि साहब मेरी कला की कद्र करने वाला लगता है, जो इतना कुछ पूछ रहा है। जब किशन इधर हुआ तो मैंने कहा, “अरे, तुमने ज्यों साहब को बताया सबकुछ...?”

“मैं ज्यों बताने लगा...साहब ने खुद ही पूछ लिया कि यह मीटिंग में आज ही गया है या पहले भी जाता है...मैंने कह दिया जी पहले से ही जाता है और कहानियां और लेख वगैरह लिखता है...यमला जट्ट के गीत गाता है...भला यह बताने में तुझारी शोभा कम हो गई?” किशन खुश हो रहा था।

दूसरे दिन जब मैं गांव से चलने लगा तो तूंबी झोले में डालकर साइकिल के आगे टांग ली। आज तूंबी मेरे साथ थी...मेरा मन इस बात से प्रसन्न था।

कोठी पहुंचा। किशन ने साइकिल से उतरते ही पूछा, “ज्यों भाई, लाए हो आज तूंबी? साहब आज तुमसे गीत सुनेंगे।”

“तुम चुप रहो, जब साहब कहेगा, देखा जाएगा...अभी ज़्या है सुबह-सुबह गीतों को...।”

साहब बाड़ी के पास बैठे अखबार पढ़ रहे थे। ‘सत श्री अकाल...’ कहता हुआ मैं आगे निकल गया था। अभी साहब ने चाय पीनी थी। किशन भला कहां चुप रहने वाला था। चाय का कप देने गया तो साहब के कान में फूंक मार आया, “सर जी, निंदर गांव से अपनी तूंबी लाया है।”

साहब की आवाज़ आई, “ओए...यहां ज़ड़ा ज़्या कर रहा है...यहां आ...ला अपनी तूंबी दिखा मुझे कैसी है...”

मैंने झिझकते हुए तूंबी झोले से निकाली और साहब के सामने जा हाज़िर हुआ। लाल रंग की तूंबी के साथ हरे रंग की लोगड़ी का फूल भी लटक रहा था।

“सर जी, यह मेरे गुरु यमला जी की बज़िश है जी...वो तूंबी के बादशाह थे...।”

मैंने तूंबी की तार पर उंगली मारी...तूंबी टुनकी! जैसे उसकी मीठी-सी टुनकार से बगीची की फूल पज़ियां भी महक उठी हों। तूंबी पर उंगली का पोर लगाया...साहब की आंखें चमकीं...पास खड़ा किशन भी बागो-बाग हो रहा था।

“ओ सुनाओ भाई कोई गीत अपने उस्ताद यमले जट्ट का।”

साहब ने चाय का अंतिम घूंट भरा और कप नीचे रख दिया। सुबह की ठंडक में मैं गीत गाने लगा:

सतगुर नानक आ जा
दुनिया नूं दीद दिखा जा
संगत पई पुकारदी
तेरे हथ विच्च चाबी ओ दाता
सारे संसार दी
सतिगुरु नानक आ जा...

मैं गा रहा था। जज साहब आंखें बंद करके झूम रहे थे। तूंबी की मीठी-मीठी टुनकार जैसे साहब को अंदर तक गहरे आनंदित कर रही थी। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं सच्चे दिल से एकसुर होकर बाबा नानक को आवाज़ें मार-मारकर पुकार रहा होऊं :

अज्ज पंजा ते ननकाणा
नज़रां तों दूर ने
तेरी दीद दी खातर बाबा
अज़िखयां मजबूर ने
आ, यमले जट्ट दी तूंबी
तैनूं वाजां मारदी
सतगुर नानक आ जा...

गीत खत्म हुआ...साहब मुस्कराया, “ओए बच्चे, तुमने तो कमाल कर दी...तुमने यहां अर्दली लगकर ज़्या लेना था ओए? तुम ऐसे ही स्टेजों पर गाओ गाने...बहुत पैसा है...तुझारे पास तो कला है।”

“सर जी, इस तरह की कला की कद्र नहीं है आज के ज़माने में...स्टेजों पर धूतकड़ा डाल-डालकर और चीखें मार-मारकर गाने वालों की ज़्यादा पूछ है, तूंबीवालों बेचारों को कौन पूछता है जी...कोई नहीं पूछता जी।”

साहब मेरी बात सुनकर हंसने लगा, “हां...तुज्हारी बात तो ठीक है...आजकल लांगड़-जूंगड़-सा गाते हैं...ओ हां सच...तुज्हे यमले जट्ट का वो गीत आता है...सतगुर नानक तेरे रंग न्यारे ने”

“हां सर जी, सतगुर नानक तेरी लीला न्यारी ऐ...गीत आता है जी...बहुत मशहूर है जी यह गीत...जगह-जगह बजता है आज भी गांवों में।”

मैं गीत गाने लगा। गीत खत्म हुआ। साहब ने गीत की व्याख्या करनी शुरू कर दी, “भाई यमले जट्ट ने ठीक ही लिखा है...बाबे नानक की लीला न्यारी है...सारी दुनिया गौर से देखती फिरती है...ओए बेटे, तुमने चाय पी ली थी...भला?”

“हां जी सर...पी ली थी।”

“अच्छा फिर करो काम तुम...मैं जरा सैर कर लूं...आज कचहरी भी जल्दी जाना है...काम काफी है।” कहते हुए जज साहब टहलने लगे।

मैं और किशन रसोई में आ गए थे। किशन शोर मचा-मचाकर खुश हो रहा था “ज्यों भई देखा, कितना खुश हुआ साहब तेरे गीत सुनकर...तुम तो डर रहे थे साहब से...।”

मैं भी इस बात से खुश था। बड़ी देर बाद मैंने गाया था...सुकून-सा मिल गया था अपने आप को।

थोड़ी देर बाद साहब भी अंदर आ गए, “ओ निंदर...यह अपनी तूंबी यहीं रख छोड़ो...गांव ना ले जाना इसे...बड़ी टुनकती है टुंग-लुंग करके तुज्हारी तूंबी।”

मैंने तूंबी वहीं रख दी। यह बात बहुत ही अच्छी हुई थी...

ज्योंकि घर में तूंबी बेचारी खाली पड़ी थी...अब यहां हाथ सीधे हो जाया करेंगे...साहब ने तूंबी वहां रखवाकर बात खुद ही बहुत बढ़िया कर दी थी।

दूसरे दिन साहब ने फिर एक गीत सुना था और शाबाश दी थी।

एक दिन शाम को साहब कहने लगा, “ओ निंदर...आज कोई गीत ही सुना दे यार...यमले जट्ट का।”

मैं तूंबी पकड़कर हाजिर था। गीत के बोल थे:

तेरे नीं करारां मैंनूं पट्टेया

दस मैं की प्यार विच्चों खट्टेया

साहब झूम रहे थे। आज उन्होंने अपना मूड भी बनाया हुआ था। मूड तो वह हर शाम को बनाते ही थे। गीत खत्म हुआ...वह उठकर साथ वाले कमरे में गए...और पैग लगा आए...कुर्सी पर बैठे हुए बोले, “चल भई यमले जट्ट के चले...और सुना दे अब...”

मैं गा रहा था :

ठंडी ठंडी वा चन्ना

पैंदीयां फुहारां वे

आ जा मेरे चन्ना

जिंद तेरे उजों वारां वे

साहब को जैसे और ही मस्ती चढ़ती जाती थी। वह खूब दाद दे रहा था, “ओ वाह भई निंदर...ओ भई बेटे तुमने तो कमाल कर दी...ओ वाह-वाह।”

गीत खत्म हुआ...वह अंदर गया...और पैग लगा आया। मैं लगातार पांच गीत गा चुका था। तूंबी भी खूब टुनकी थी। बीच में किशन ने आकर कहा, “जनाब जी, सज़्जी तो बन गई...रोटी कब बनाऊं...बताओ जी...?”

साहब चिढ़ गया, “न तुमने इतनी जल्दी जाकर कौन-सी बारात लेकर जाना है? तुमने तो यहीं घूमना है...निंदर ने अपने गांव जाना है...तुम पहले जाने को तैयार हुए बैठे हो।”

बोलते-बोलते जज साहब कुर्सी से उठ पड़े। मैंने तूंबी झोले में डाल ली। झोला किल्ली पर टांग दिया।

जज सहब अंदर से ही बोले, “ओ तूबी वाले...तुम अब जाओ अपने गांव...सुबह जल्दी आ जाना।”

“अच्छा जी सर।” कहकर मैं साइकिल लेकर गांव को जाती अंधेरी कच्ची सड़क पर हो लिया...मेरा साइकिल रेल बनी जा रहा थी...मैं उस्ताद जी का गीत गा रहा था :

मैनुं लै चल नदियों पार
घड़े दे अगगे हत्थ जोड़दी।

साहब की नज़रों में मैं मरासी बन गया!

कई बार मैं सोचता...साहब मेरी कला का कद्रदान है...जब मैं गाता हूं तो खुश हो-होकर शाबाशी देता है। इस तरह मैं हौसले में हुआ रहता हूं।

एक दिन किशन कहने लगा, “भई, मैं तो अब दो महीने की छुट्टी जाऊंगा...तुम अकेले ही रहोगे यहां...साहब तुझें गांव भी नहीं भेजेंगे...सारा काम तुझें करोगे।”

मैंने कहा, “काम को यहां कौन से बैल जोड़कर ज़मीन जोतनी है...जो कहेगा साहब करता जाऊंगा...तुम दो महीने की जगह भले ही छह महीने की छुट्टी ले जाओ।”

किशन की बहन ने अपना नया घर बनाना था। छुट्टी भी किशन की बहुत जमा हुई थीं। इसलिए दज़्तर उसे छुट्टी से ना नहीं कर सकता। किशन छुट्टी चला गया, मैं रह गया अकेला।

साहब का हुज़्म हुआ, “तुम उतनी देर गांव जाना बंद कर दो...जितने दिन किशन छुट्टी काटकर नहीं आता...उतने दिन कोठी में रहना।”

मैं कोठी में ही रहने लगा। कचहरी में आवाज़ें मारने के लिए उतनी देर किसी और अर्दली की ड्यूटी लग गई थी, उसका काम सिर्फ कचहरी में ही था। वह कोठी नहीं आता था। कोठी में मेरा काम ही था।

मैं सुबह-सवेरे उठता। साहब के लिए चाय बनाता। फिर साफ-सफाईयां करता...ब्रेकफास्ट तैयार करता...कपड़े प्रेस करता...बूटों पर ब्रश मारता...साहब की पगड़ी की पूणी करवाता...साहब को कचहरी भेजकर फिर प्याज़ों की ज़्यारियों में से पॉपुलरों और सफेदों के गिरे पज़े चुगने बैठ जाता।

साहब आंगन में गिरे पॉपुलरों के पजे देखकर बहुत खीझते, “ओए...एक भी पजा नहीं दिखाई देना चाहिए मुझे।”

मैं सारा दिन पजे चुगता रहता, पॉपुलर पजे फेंकते रहते...थोड़ी-सी हवा चलती, ढेर सारे पजे पूरे आंगन में बिखर जाते...।

पजे गिरे हुए देखकर एक दिन साहब ने कहा, “ओए बात सुन, मेरे बाद घर में कोई काम-धंधा भी कर लिया कर...ज्या करते हो मेरे बाद...बताओ मुझे...यह तूंबी ही ना टुनकाते रहा करो...काम बहुत पड़े होते हैं।”

बीस-पच्चीस दिनों में ही साहब का स्वभाव मुझे कुछ-कुछ बदलता हुआ लगा। यूं ही छोटी-छोटी बात पर साहब खीझने लगा था। एक दिन कहने लगा, “ओए निंदरी-जिंदरी, झाड़ू नहीं मारा...आज तुम खाली बैठे ज्या करते रहे...?”

मैंने स्वाभाविक ही कहा, “साहब, झाड़ू ढूँढ-ढूँढकर थक गया मैं...मिला नहीं...सर, आपने तो नहीं देखा कहीं पड़ा हुआ?”

यह सुनते ही साहब बहुत खीझ गया, “मुझे झाड़ू पूछते हो? मैं झाड़ू की चौकीदारी करता हूँ यहां? मैं यहां झाड़ू संभाला करूँ तुम्हारे? मुझसे झाड़ू पूछता है मूर्ख...”

साहब को खीझा हुआ देखकर मैं खिसक गया।

फिर दोपहर को प्याजों की ज्यारियों में पजे चुगने बैठ गया। साहब सिर धोकर हटा था। आंगन में धूप में कुर्सी पर बैठकर बाल सुखा रहा था। मैंने पजों की टोकरी भरी और उठा। बिना सोचे समझे ही साहब से पूछ बैठा, “सर जी, पहले जिस खड्डे में पजे फेंका करता था, वो तो भर गया...अब कहां फेंकू?”

यह सुनकर साहब को जैसे आग लग गई, “मेरे सिर पर फेंक! पागल...अजल का मारा...मुझे पूछ रहा है...कहां फेंकू पजे...बाहर फूँको इन्हें? करता ज्या है...मैंने फेंकने हैं पजे...उल्लू साला...?”

साहब से झिड़कें खाकर कोठी से बाहर आ गया और टोकरी

उसी गड्ढे में ला फेंकी। घड्ढे में टोकरी फेंकते हुए मेरे मुंह से निकल गया, “लो फेंक दिए तुम्हारे सिर में पजे।”

पता नहीं ज्यों, साहब का स्वभाव दिन-ब-दिन चिढ़चिढ़ा होता जा रहा था। मैं चुप-चुप रहने लगा था। साहब मतलब से ही, संक्षेप में बात करता...कभी गीतों या तूंबी की। कोई फालतू बात नहीं करता था। मैं सोचता...साहब को कोई घरेलू टेंशन होगी। बीबी झगड़ती होगी...या यहां नहीं आ रही होगी, या कोई और घरेलू मसला होगा। हर समय मुंह ही फुलाए रखता है।

रात के साढ़े दस बज गए, साहब अपने बैडरूम में पैग लगाता...मूड बनाता रहा। अभी तक सज्जी रोटी तैयार करने का कोई हुज्म नहीं हुआ था। मैं हुज्म के इंतज़ार में बैठा था। साहब ने रोटी के लिए ऑर्डर इसलिए नहीं दिया था कि अब कौन-सा मैं गांव जाता हूँ, कोठी में ही सोता था। इसलिए साहब रोटी खाने में देरी करने लगा था।

पौने ग्यारह का समय था। आंगन में काफी अंधेरा था। मैं बाहर बैठा था। साहब अंदर से आया...आज कुछ ज्यादा ही पी गया लगता था...आते ही बोला, “ओए मरासी, कैसे बैठा है जैसे कद्दुओं के व्यापार में घाटा पड़ गया हो? आज दाल-सज्जी ज्या बनाई है बे लड़के...?”

मैं ‘मरासी’ शब्द सुनकर एकदम हैरान हुआ...कि मैं मरासी कहां का? मैं तो क्षत्रियों का बेटा हूँ। तूंबी बजाता होने के कारण या गाता होने के कारण ही साहब ने मरासी कहा है।

मैंने कहा, “सर, आपने अभी कोई हुज्म नहीं किया था...बताइए कौन-सी सज्जी बनानी है...अभी बना देता हूँ।”

“सज्जी? तुम ऐसा करो, आज ताज़ा-ताज़ा बैंगन तोड़कर भुर्ता बनाओ...उसमें अदरक, प्याज, टमाटर सबकुछ डालो...।” साहब ने बाड़ी में खड़े बैंगनों की ओर देखा...जो अंधेरे में अच्छी तरह दिखाई नहीं दे रहे थे।

“अच्छा सर जी...मैं बैंगन तोड़कर लाता हूँ जी।”

“अबे रुक जा ओए...रुक जा मरासी...रुक जा, अंधेरा है...मैं बैटरी जलाता हूँ...तुम बैंगन तोड़ो।”

साहब ने बैटरी जलाकर रोशनी की। मैं आगे-आगे जाकर अभी ज्यारी में जाने ही लगा था कि कोई चूहा या बिल्ली या उसका बच्चा पौधे के बीच से सरपट दौड़ा...पता नहीं ज़्या था और किधर गया? पौधे तेज़ी से हिले...मैं और साहब पीछे की ओर भागे। साहब तो भागते-भागते कोठी के दरवाज़े के पास जा खड़ा हुआ।

“ओए यह ज़्या था मरासी? कोई सांप-सूंप ही ना हो बे...साला सुररर-सुररर करके भाग गया। ...मारो भुर्ते की...मूंगी साबुत बना लो...भै...नया ही स्यापा शुरु होने लगा था...ओ हो...।”

जब मैंने साहब को पीछे की ओर भागता देखा तो मेरी हंसी निकल गई थी। हंसी मैंने बड़ी मुश्किल से रोकी थी कि कहीं साहब गालियां ही ना देने लगे कि तुम हंस ज्यों रहे हो।

“ओ कंजर मरासी, मर गए थे आज तो...।”

साहब की सांस फूली हुई थी। मैं इस बात से भी हैरान हो रहा था कि यह मेरा नाम मरासी ज्यों डाल रहा है? फिर वही बात सोचने लगा कि तूंबी के कारण ही कहता होगा और शराब का नशा भी है। ज़्या पता, सुबह ख़ुद ही कहने से हट जाए...मरासी।

“किशन साला छुट्टी चला गया...और इधर आधी रात को अगर सांप डंस लेता, फिर ज़्या बनता...? मैं बनाऊंगा उसे बंदा...आ लेने दो उसे...और तुम.. तुम लेखक बने फिरते हो...जी मैं यमले जट्ट का चेला हूँ...सपने में भले यमला जट्ट देखा ना हो कभी...मुझे चाहे अब बिल्ली काट जाती...।”

मैंने कहा, “सर...आगे मैं था...अगर सांप डंसता तो पहले मुझे डंसता... अगर बिल्ली काटती...तो पहले मुझे काटती...आप तो बैटरी लेकर बहुत पीछे चल रहे थे...”

“अच्छा-अच्छा...मुझे सफाई न दे...अगर नहीं सांप ने डंसा तो अब ले आ पकड़कर सांप बाड़ी से...ला...लाओ डंसवा दो...जा...जा...साथ में बिल्ली भी पकड़ लाना...लाओ, सांप और बिल्ली इकट्ठे कर दो...करवा दो मुझ पर हमला, जो तुम करवाना चाहते हो...।”

मैं हैरान था कि साहब मेरा ही तवा लगा रहा था। यह तो सौतनों वाले ताने देने लगा है। मैं बहुत उदास हो गया था। मेरा दिल कोठी से भाग जाने के लिए उतावला होने लगा था।

“तूंबी बजाकर तुम थकते नहीं...काम कौन करेगा मेरे? ये सब मरासियों वाले काम हैं...मरासी बजाते हैं तूंबियां...करो मन-मर्ज़ियां...बजाओ तूंबियां।”

साहब ख़ुद ब ख़ुद बिना वजह बोले जा रहा था। पहले बेहिसाब पी चुका था।

“अबे मरासी।” साहब चीखा...“ओए मुझे नहीं खाना खाना-वाना ओए...रहने दे खाना...मुझे सोना है मरासी...मुझे सोना है।” साहब की ज़बान भी तुतलाने लगी थी।

“सर, अब दाल तो चढ़ा दी है...अभी बन जाएगी।”

“ओए मुझे नहीं खानी मरासी...मुझे नहीं खानी...सुबह बना लेना दालें-वालें...रख दे ...रहने दे मरासी...छोड़...रहने दे।”

अब मैं ज़्या करता? अपनी रोटी भी कैसे बना लेता...अगर साहब की रोटी बनाता, तो ही अपनी खाता? साहब ने रोक ही दिया था। मैं हैरान-सा हुआ दुखी और बुझे मन से भूखे पेट अपने कमरे में आकर लेट गया। नींद भला कैसे आती, बल्कि साहब के बोल, ‘ओए मरासी, ओए मरासी’ मेरे कानों में गूँज रहे थे।

लेटा-लेटा मैं अपने भविष्य के बारे में सोचने लगा कि मेरी सारी उम्र यहीं...इसी काम में गुज़र जाएगी? यह सवाल मैंने अपने आप से किया...कोई जवाब नहीं था। ज़्या...मेरे जैसे ही हैं सारे अर्दली? ज़्या

सबके साथ ऐसा ही होता है ? ज़्या...सारे साहब मेरे इस साहब जैसे ही हैं ?

एक सवाल पैदा होता, उसी तरह खड़ा रहता और उसके साथ ही नया सवाल आ खड़ा होता।

सवालियों में घिरे को पता नहीं कब नींद आ गई।

जब जज को भेंस भेंट में मिली!

किशन छुट्टी काटकर आएगा। आकर काम संभालेगा...और मेरी जान छूटेगी। फिर मैं पहले की तरह रोज़ गांव चला जाया करूंगा, और किशन को उलाहना भी दूंगा कि मुझे फंसाकर खुद भाग गया तू... ?

दिन में साहब 'मरासी' कहकर नहीं बुलाता था। रात को ही उसे मरासी दिखाई देने लगता था। जब साहब घूंट लगा लेता था तो फिर "ओए मरासी-ओए मरासी।"

"ओए मरासी, अब तुमने कभी तूंबी नहीं बजाई ओए...ज़्या टूट गई तूंबी तुज़्हारी...?" एक रात साहब ने कहा।

"सर जी, तूंबी ने तो ज़्या टूटना, आप ही गुस्सा हुए रहते हो, तूंबी ज़्या करे?" मैंने हौसला करके कहा था।

"अबे नहीं मरासी, मैं ज्यों गुस्सा होऊंगा...लाओ तूंबी लाओ...लाओ, लाओ तूंबी...बजाओ तूंबी आज...ला किल्ली से उतारकर...टुंग-लुंग...लुंग... किल्ली से फांसी पर लटकाई हुई है टुंग-लुंग अपनी, अबे ला...।"

साहब रोज़ की तरह मूड बनाकर बैठा था। मैं तूंबी लाया।

"सर जी, कौन-सा गीत सुनाऊं?"

"ओए सुना दे, जो मर्जी सुना दे यमले का...बजा-बजा अब तूंबी।"

"सर जी, मेरे उस्ताद यमला जी का एक गीत है...लो सुनो ज़रा यह गीत...लोग बड़ा पसंद करते रहे हैं।" मैंने गाना शुरू किया :

असलियत नूं जो भुल्ल गया, ओ नकल नू अपना रहै...

अपनी नज़र मैं वेखया, बंदे नूं बंदा खा रहै...

साहब सिर हिला-हिलाकर झूम रहा था। जब मैं गाकर रुका तो

साहब ने बहुत अजीब-सी बात कही। कहने लगा, “अबे मरासी, अगर तुम यही तूंबी लेकर बसों या रेलगाड़ियों में गाने सुनाओ लोगों को...और हाथ में एक टूटा-सा पकड़ लो...तो तुज्हे कभी कोई घाटा ना रहे...पैसों से ठूटे भर जाया करेंगे...”

और फिर खुद ही साहब दांत निकालने लगा, “ही...ही...ही...।”

यह बात सुनकर मैं बहुत दुखी और हैरान हुआ और सोचा कि उस दिन तो साहब कह रहा था कि अगर तुम प्रोग्राम करो...स्टेजों पर गीत गाओ तो बहुत पैसा कमा सकते हो...तुज्हारे पास गुण है आज ज्या बकवास कर रहा है। कैसा अफसर है यह, कुछ समझ में नहीं आता इसका...पल में कुछ और पल में कुछ और। अब मेरा मजाक उड़ा रहा है, कभी तारीफ करने लगता है...यह ज्या बात हुई भला? मनोरोगी साहब के बस पड़ गया हूं मैं।

जब मैं झोले में तूंबी रखकर किल्ली पर टांगने लगा तो पता नहीं कैसे उंगली तूंबी की तार से छू गई, तूंबी टुक पड़ी, “टुंग...ग” मुझे ऐसा लगा जैसे तूंबी ने बड़े ही रोष से मेरी ओर देखकर कहा हो, “अबे जा...बड़ा आया कलाकार, मेरी तौहीन करवा रहा है...मुझे मत बजाया कर...कहां लाकर फंसा दिया है मुझे अंधी गुलामी के संसार में...। तुम एक महान लोक-साज को बर्बाद कर रहे हो...”

मेरे गुरु की निशानी ‘तूंबी’ का मैं शुरू से ही बेहद सज्मान करता आ रहा हूं और उसकी तौहीन के बारे में सोचते हुए मुझे सचमुच दुख होने लगा।

एक दिन सुबह जब मैंने साहब को चाय का कप दिया तो कहने लगा, “बात सुन ओए निंदरा, अब हम घर की भैंस के दूध की चाय पिया करेंगे...भैंस आ जाएगी अपने पास परसों तक.. फिर मौजें ही मौजें...अरे तुम दूध दोह लेते हो ना? चारा भी तुम डाला करोगे भैंस को।”

“सर जी, भैंस तो मैंने कभी नहीं दोही...चारा डाल दिया करूंगा...किशन जानता है दूध दोहना...वो दोह लिया करेगा।”

“दूध दोहना कौन-सा मुश्किल है ओए? पहाड़ थोड़े तोड़ना है?...मैंने नहीं दोहा कभी...और तुम ज्या जानते हो? टट्टू दोहना आता है तुज्हे? तूंबी की टुंग-लुंग ही आती है? तुम भर्ती पता नहीं कैसे हो गए...हो तुम मूर्ख के मूर्ख ही...।”

“यह देख...मेरी कमीज का बटन टूटा हुआ है...यह लगाया नहीं तुमने...कौन लगायेगा इसे...तुज्हारा बाप?”

मैंने आगे से कहा, “सर जी, मेरा बाप दर्जी नहीं है...वो तो गांव में परचून की दुकान करता है...आप मेरे माँ-बाप को...।”

मेरी बात अभी पूरी नहीं हुई थी कि साहब कड़का, “निकल जा मेरे कमरे से बाहर...कुजा कहीं का।”

साहब सुबह-सुबह चाय पीता ही गर्म हो गया था। रविवार था। आज कचहरी नहीं जाना था। जिस दिन से किशन छुट्टी गया था उस दिन से मैं भी गांव नहीं जा पाया। मैं चाहता था कि दो-तीन घंटों के लिए मुझे गांव जाने की छुट्टी मिल जाए। पर अब साहब से छुट्टी के बारे में पूछने की भी हिज्मत नहीं रही थी। यूं ही ज्वामखाह ही खीझ और झगड़ रहा था। मैं चुपचाप इधर-उधर के काम करता रहा।

मैं हैरान था कि साहब अपने परिवार से बिल्कुल ही टूटा हुआ था। साहब का बड़ा लड़का और लड़की विदेश में पढ़ते थे, वे कभी कभी फोन करते। छोटा लड़का और बीबी जी मोहाली रहते थे।

एक दिन साहब कचहरी से आते ही शुरू हो गया, “ओए इधर आ, बात सुन, बेवकूफ...कोई काम धंधा कर-मर लिया कर..सारा दिन मेरे जाने के बाद तूंबी उठाकर टुंग...टुंग...टुंग...मैं यह तुज्हारी तोड़ दूंगा...फिर कहेगा...तोड़ दी...।”

यह सुनकर मुझे भी गुस्सा आ गया। हौसले से मैंने कह ही दिया, “सर तूंबी तो अब मैंने बजाई नहीं कभी, इसका ज्या कसूर है भला

सर। आप काम बताओ, ज़्या नहीं किया मैंने...सारा दिन सफेदों और पाँपुलरों के पजे चुनता रहता हूँ मैं...आपके कपड़े धोता हूँ...प्रेस करता हूँ और जूते पालिश करता हूँ...सज्जियों की देख-भाल करता हूँ...कोठी की सारी सफाई करता हूँ...और ज़्या करूँ बताइए ?।” मैं रो पड़ा।

मैं कुछ और बोलता, साहब भड़क उठा, “साला मरासी कहीं का...कुजे की ज़बान है...कैसे लगा है भौं-भौं करने...काम तुम खाक करते हो...”

मैं कमरे से बाहर आ गया था। साहब कहीं कचहरी में ही किसी वकील से झगड़ पड़ा था और वकील ने कहा था कि वह सेशन जज के पास शिकायत दर्ज कराएगा। सारे वकील हड़ताल भी कर सकते हैं। कचहरी से आया था और मुझ पर आकर नज़ला झाड़ने लगा था। कोई बात नहीं, भले दिन आएंगे। यह सोचकर मन को ढाढस बंधाया।

“अबे, इधर आ।” लगभग दस मिनट बाद साहब ने आवाज़ लगाई, “चाय बनाओ ओए बढ़िया-सी।”

आज नई बियाई भैंस आ गई थी। किसी गांव के ज़मींदार छोड़कर गए थे। यह खरीदकर नहीं लाई गई थी। मुझे तो कहीं से यह पता चला था कि भैंस छोड़ने वाले जट्टों का केस साहब के पास लगा हुआ था। वैसे कानूनी तौर पर केस तो उनके हक में ही होने वाला था लेकिन वकील ने उन्हें कहकर तोहफे के तौर पर साहब को भैंस भेंट करवाई थी।

भैंस देहाती थी। हट्टी-कट्टी...दूसरी बियाई की। नई जगह आई होने के कारण ऊंची-ऊंची रंभा रही थी। आस-पास की सभी कोठियों में भैंसों के ‘सुरिले स्वर’ गूँज रहे थे। भैंस को इस तरह देखकर साहब खीझता फिरता था, “अबे इधर आ, इसे चुप करा साली मेरी को, कैसे रंभा रही है ? ...घर में आई हो...यह कौन-सा कसाइयों की हवेली है...हूँ...कैसे रंभा रही है हरामी...”

साहब को खीझा देखकर मुझे हंसी आ गई पर मैं मुंह खोलकर

ना हंस सका, अंदर से खुलकर हंस रहा था। यहां तो हंसने पर भी पाबंदी थी। गनमैन भी चोरी हंसते थे। रीडर और स्टैनो भी कचहरी में कभी हंसते नहीं देखे थे। अजब तमाशा था...मैंने मौके की नज़्ज पहचानी और साहब से कहा, “सर जी, मेरी बात सुनो...यह तो बेचारी फिर भी भैंस है जी...जब कोई नई-नई दुल्हन ससुराल जाती है तो अजनबीपन तो महसूस करती ही है जी...यह भी करेगी ही...”

यह सुनकर साहब को भी हंसी आ गई, “बात सुनो बे...बातें मत जोड़ो ज़्यादा...इस ताई अपनी को चुप करा...कैसे चिल्ला रही है साली।” साहब की हंसी से मुझे बड़ी खुशी हुई कि शुक्र है खुदा का।

मैंने फिर मौके पर व्यंग्य कसा, “सर जी, लोग कहते हैं ना कि भैंस के आगे बीन बजाने का ज़्या फायदा...लो फिर हम भैंस के आगे तूंबी बजाकर देख लेते हैं...ज़्या पता रास आ ही जाए तूंबी...बजाऊं जी लाकर तूंबी ? लाऊं इसके सामने ?”

साहब फिर हंसा और इधर-उधर घूमने लगा, “हे...हे...देखो कंजर की कैसे आसमान सिर पर उठाए बैठी है...।”

साहब ने भैंस और उसके बच्चे को पुचकारा और फिर कमरे में जा घुसा। जैसे भैंस और बच्चे ने उसकी परवाह ही ना की हो, होंगे तुम जज अपने घर में...चलते फिरो...आ गए बड़े जज...हमें कौन-सा तुम फांसी चढ़ा दोगे।

माँ और बेटा दोनों मिलकर...गला फाड़-फाड़कर गीत गा रही थीं...मैं अंदर खूब हंस रहा था...उस मौके पर मुझे सुरिंदर कौर और प्रकाश कौर का गाया गीत याद आया :

मावां ते धीयां रल बैठीयां नी माए
दोवें करदीयां गल्लां नी पईयां।

एक नया स्यापा

मीठी-मीठी धूप अच्छी लगती थी। आज सरकारी छुट्टी थी...कोई दिन-त्योहार था। साहब ने आज सारा दिन घर ही रहना था और मुझे डांटते रहना था। और साहब को काम भी ज़्यादा होता था? कचहरी से कोठी...और मुझे डांट-डपट। और कोई है भी नहीं, साहब बेचारा झगड़े तो किसके साथ... ?

केसों की फाइलें तो वह सुबह-सुबह ही पढ़ चुका था। पहले रोज़ की तरह नहाया, सिर धोया और बाल सुखाने के लिए धूप में, आंगन में कुर्सी पर बैठ गया...सूरज के सामने सिर करके बाल सुखाने लगा। मैं इधर-उधर छोटे-मोटे काम कर रहा था।

“ओए तूबी मास्टर...इधर आ...आज तुज्हे काम लगाऊं...इधर आ।”

“हां जी सर...हुज़्म जी।”

“जा अंदर से तेल वाली शीशी ला...मेरे सिर में लगाओ, देखते हैं तुज्हे यह भी करना आता है या नहीं...कि सिर्फ टुंग-लुंग ही करनी आती है।”

साहब का हुज़्म मानते हुए तेल वाली शीशी अंदर से लाया। पहले मैंने कभी किसी के सिर में तेल से मालिश नहीं की थी और ना ही किसी से करवाई थी। शीशी खोली...हथेलियों पर तेल लगाया...और साहब के बालों को लगाने लगा।

“सही तरीके से लगाना ओए सही तरीके से...कनपटियों पर भी लगा ज़रा...कानों के ऊपर से करो ज़रा...अच्छी तरह...।”

“अच्छा सर जी।”

मैं साहब के सिर के बीचों-बीच उंगलियां फेरने लगा।

“अबे ऐसे नहीं...पीछे से बाल पकड़ो पहले...फिर बीच से उनके साथ मालिश कर...तुज्हे सिर में मालिश करनी भी नहीं आती उल्लू।”

“नहीं जी...आती है...देखते जाइए, अच्छी तरह करूंगा...।” मेरी बात सुनकर साहब फिर भड़का, “आती है तुज्हे खाक...बातों के सिवाए ज़्यादा आता है तुज्हे... ?”

“खाक” शब्द से मुझे फिर हंसी आ गई...कितना सुंदर शब्द उपयोग किया था साहब ने...!

मैं चुप करके साहब की सुन रहा था और सिर को जो तेल लगा रहा था...पता नहीं चल रहा था कि वह कहां समा रहा है। खुशकी ही खुशकी थी साहब के सिर में। मैं संवार-संवारकर सिर पर मालिश कर रहा था...साहब को जैसे बहुत आनंद महसूस हो रहा था।

“वाह ओए निंदरया...तुज्हे तो भई सिर में मालिश करनी भी आ गई...हां...वाह भई वाह...सही से...और सही...”

लगभग पंद्रह मिनटों में मैं थक गया। साहब आंखें बंद करके आराम ले रहा था। जब उसने कहना था मुझे...तभी हटना था पर वह जल्दी कहीं हटने को कह रहा लगता नहीं था। फिर मैंने ही पूछ लिया, “सर जी...और मालिश करूं या बस करूं ?”

“ओए मूर्ख कहीं के, इतनी जल्दी थक गया? अंडे देने हैं जाकर कहीं? उंगलियां फेरो बीच-बीच में।”

मैं उंगलियों की कंधी बनाकर साहब के बालों में फेर रहा था। कुछ-कुछ बाल अड़ रहे थे, “अबे बाल उखाड़ने हैं...बाल ज्यों उखाड़ रहे हो? तूबी मास्टर...बाल सुलझाओ...आदमियों की तरह काम कर।”

फिर थोड़ी देर बाद खुद ही कह दिया, “अब रहने दे उलझे बालों को...मालिश ही कर दो अच्छे से...वाह भई वाह...हां...भई निंदरया अब तुम पहले से समझदार हो रहे हो...तुज्हे अज़ल आती जाती है...हो तो तुम समझदार...पर कभी-कभी मूर्खों जैसी बातें करते

हो...मैं सब हटा दूंगा तुम्हारी ऐसी बातें...देखता जा...।”

साहब बिन पिए ही इधर-उधर की मारे जा रहा था। करारी धूप में साहब को सिर में मालिश करवाने का ख़ूब स्वाद आ रहा था। सिर में बहुत सारा तेल समा जाने से भी बहुत फर्क लग रहा था कि साहब को कुछ ‘अज़ल’ आ गई लगती थी। मैं साहब से कहने ही लगा था कि आपके सिर में खुशकी बहुत है...तभी आपका स्वभाव खुशक है...अब खुशकी ख़त्म हो गई है तेल से...अब आपका स्वभाव भी बदल जाएगा...तेल जैसा मुलायम हो जाएगा स्वभाव आपका...फिर सोचा रहने दू...ज़्या पता...गरम ही ना हो जाए और फिर गालियां देने लगे।

“ओए जा चारपाई लाकर रख यहां...मैं लेटूं।”

चारपाई भी आ गई थी। साहब बोला, “ओए निंदरया, अब बालों में मालिश करनी रहने दे भले...तुम वैसे ही हल्का-हल्का मेरे बालों में हाथ मारते जाओ...मैं ज़रा आंख लगा लूं।”

मैं उसी कुर्सी पर बैठकर बालों में हाथ मारने लगा। मुझे अपने आप पर हंसी भी आई कि भला मेरा इसके बालों में ज़्या गुम हुआ है...जिसे मैं ढूंढ रहा हूं और वो मिल नहीं रहा ?

साहब ने एक छोटा-सा खर्राटा लिया और फिर खर्राटे मारने लगा। मैं धीरे-धीरे उठा। साहब को देखकर मेरा मन भी किया कि मैं भी धूप में सोऊं। बाड़ी के पास घास पर पल्ली पड़ी हुई थी, सीधी करके मैं लेट गया। अभी मैं लेटा ही था कि घर के आगे सफेद मारुति आकर रुकी और फिर आगे निकल गई। मुझे लगा, जैसे पहले साहब और बीबी जी मारुति में आ गए हैं, पर उनका यहां ज़्या काम था ? किसी और की थी वो मारुति, तभी तो अपने आप आगे चली गई थी।

अब तो साहब, बीबी और रिकू को मिले भी देर हो गई थी। मिलने को मन कर रहा था पर इधर तो सिर खुजलाने का भी समय नहीं मिलता था। साहब कहीं आने-जाने नहीं देता था। कई बार मैं सोचता कि फोन करूंगा। ज़्या पता, रिकू भी वहीं आया हो। उससे भी

बात हो जाएगी। वह मुझे ज़रूर याद करता होगा, मेरा दोस्त रिकू।

शाम को फोन करने का मन बनाकर मैंने साहब से बहाना मारा, “सर जी, मेरे सिर में दर्द हो रहा है, बाज़ार जाकर गोली ले आऊं जी ?”

“तुम्हारे सिर में कैसे दर्द हो रहा है, सिर तो मेरा दर्द करने लगा दिया तुमने, बाल-बाल उखाड़ दिया मेरे सिर का...मालिश भी नहीं करनी आती, अब सारे बालों में दर्द हो रहा है मेरे...जूड़ा भी नहीं बांधा जा रहा मुझसे।” साहब ढीला-ढीला और रूखा-रूखा-सा बोल रहा था।

“सर जी, जा आऊं बाज़ार ?”

“जा-जा दफा हो। जल्दी आना।”

पैसे खर्च होने का मुझे कोई फिक्र नहीं था। मैं बीबी, जज साहब और रिकू से जी भरकर बातें करना चाहता था। फोन घुमाया, बीबी ने ही उठाया, मेरी आवाज़ सुनते ही वह खुश हो गई। जज साहब सोए हुए थे। रिकू भी यूनिवर्सिटी से आया नहीं था।

“हां निंदर बेटे, तुम्हारा ज़्या हाल है, कैसे हैं तुम्हारे जज साहब ?”

“बीबी जी, पूछो ही मत, मैं ज़्या बताऊं, आप जैसा और कोई नहीं हो सकता, मुझे कहां फंसा दिया कुदरत ने।”

कहते हुए मेरा गला रूंध गया। “तुम घबराओ मत बेटा, मन मजबूत रखो, हम तो ख़ुद तुम्हें बहुत याद करते हैं, जज साहब भी रोज़ याद करते हैं, रिकू भी पूछता है, कहता है मिलने को मन करता है...तुम किसी रविवार आ जाओ...बहाना बनाकर छुट्टी ले लेना साहब से...ज़रूर आना...।”

“अच्छा बीबी जी, पांव छूना कबूल करना...।”

पी.सी.ओ. वाले को पैसे देकर मैं जल्दी-जल्दी साइकिल भगाता हुआ कोठी आ गया।

“ओए, ले आए गोलियां ?”

“नहीं सर जी, वहीं खा ली थी, एक ही ली थी मैंने।”

“और ले मर आते एक-दो, बहुत भारी थीं गोलियां? मूर्ख...।”

“अब ले आऊं जी।”

“नहीं-नहीं, अब अपनी मौसी भैंस को पानी पिला, भौंकता फिर रहा है।”

साहब खीझा हुआ था।

भैंस की सेवा संभाल भी मैं ही करता था। दूध दोहने की ड्यूटी हमारे पड़ोसी जज साहब का अर्दली प्रेम निभा जाता था। चारा भी साथ वाले जज साहब के घर से काट लाता था। कई बार अकेला ही चारा लगाता, खुद ही मशीन चलाता। चारा फंस जाता, सांस फूल जाती, मशीन रुक जाती, दिल खीझ उठता।

शाम हो गई थी। साहब अंदर बैठा मूड बना रहा था। मुझे करने वाला कोई काम दिखाई नहीं दे रहा था। बस रसोई में ही काम था, वह भी खाना बनाने का, जब साहब ने अपनी मनपसंद सज़्जी बनाने का हुज़्म करना था, तब लगना था। बरामदे में पड़े स्टूल पर बैठकर मैं किताब पढ़ने लगा।

आधे घंटे में घंटी बजी।

मैं अंदर गया, “हां जी, सर।”

“अब बता ओए मैं ज़्या करूं? मरासी, बता मैं ज़्या करूं? मेरे बाल दर्द कर रहे हैं ओए।”

साहब ज़्यादा पी गया लगता था, मैं सामने चुपचाप खड़ा था। मेरे बोलने का भी कोई अर्थ नहीं था। साहब ने तो इधर-उधर की मारनी थी और मार रहा था।

“ओए मरासिया, तुम बोल अब ओए, बोलता ज़्यों नहीं...मेरे सिर के सारे बाल खींच दिए...एक भी बाल नहीं छोड़ा मेरे सिर का...ओए मैंने तुज्हे मालिश करने के लिए कहा था कि बाल खींचने के लिए? बता मुझे, बोल-बोल अब...ओए मरासी...गूंगा बनकर

खड़ा है...कोई ना बेटा कोई ना...तुझे मैं बनाऊंगा बड़ा गवइया...टुंग-लुंग-तुंग-लुंग...साले को ना अज़्ल ना मौत...मेरे सिर के सारे बाल खींच दिए...बाल खींच दिए मेरे...कोई ना बेटा...तेरी टांगें मैं तोड़ूंगा किसी दिन...काबू आ गया ना मेरे...तुझे रास्ता नहीं मिलेगा भागने को...साला बड़ा गवइया आ गया...टुंग-लुंग-लुंग...मरासी कहीं का, मेरे पीछे पड़ गया...मेरे बाल खींच दिए हरामी...मेरे बाल...।”

अब मुझसे भी बोले बिना रहा ना गया।

“सर जी, मैंने कहां बाल खींचे हैं...आपने सिर में मालिश करने को कहा था, मैं करता गया...ऐसे भला बाल कैसे खींच गए? मैंने तो मालिश ही की थी...आप बेहिसाब ही मालिश करवाते गए...तभी तो बाल दर्द कर रहे हैं।”

“अच्छा? मुझे समझा रहा है...? मरासी...सिर फाड़ दूंगा तुज्हार मैं, हाय, मेरे बाल खींच दिए...मेरे बाल खींच दिए ओए साले मेरे बाल...।”

बिल्कुल ही साहब की वीडियो फिल्म बनाने वाली थी। तमाशा नहीं तो और ज़्या था यह? सिर का तमाशा कर रहा था साहब...वीडियो बनाकर हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस को भेजी जाती, फिर पता चलता!

साहब पागल हुआ बैठा था। मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था, ज़्या करूं? किधर जाऊं? किसे जाकर कहूं कुछ? अभी बोटल उसके सामने पड़ी हुई थी। पता नहीं कितनी और पी जाता। बस, एक ही रट लगाए बैठा था, “मेरे बाल खींच दिए ओए साले मरासी, मेरे बाल...।”

मैं कमरे से बाहर आ गया था। किशन ‘कंजर का’ पता नहीं कब आएगा?...मेरा पीछा छूटेगा...मुझे मुश्किल में डालकर चला गया है...कभी मेरा दिल करता घर भाग जाऊं, ऐसी की तैसी मारनी है ऐसी कुज़ी नौकरी की...फिर सोचा मुश्किल से नौकरी मिली है...रोज़गार है...हर किसी को हर समय नहीं मिलता...दुख काटकर ही सुख मिलता है...कभी अच्छे दिन भी आएंगे।

घंटी बजी, साथ ही आवाज़ आई, “ओए मरासी ओए।” जैसे साहब को करंट लगा हो। मैं भागकर अंदर गया। “ओए बाहर ज़्या कर रहा है, यहीं बैठ मेरे सामने...ओए मुझे बता मरासी तुमने मेरे बाल ज्यों खींचे...ज्यों खींचे मेरे बाल? मेरे बाल दर्द कर रहे हैं...ओ मेरे दुश्मन...मेरे बाल...मैं तुम्हें देखूंगा कैसे करते हो तुम नौकरी...सुबह ही भगा दूंगा घर...तुमने मेरे...अबे खींच दिए मेरे बाल...।”

मैं दुखी तो था ही, हैरान इस बात से था कि साहब...ज़्या कह रहा है...अब कैसे पीछा छुड़ाऊं? घड़ी की ओर देखा...साढ़े दस बज चुके थे...सज़्जी-भाजी बनाने के लिए अभी कोई हुज़्म नहीं था...मेरे खड़े-खड़े ही साहब ने एक और बड़ा-सा पैग अंदर फेंका।

मैंने पूछा, “सर जी...सज़्जी कौन-सी बनाऊं जी?”

“राख बना लो...बाल तो तुमने मेरे सिर का एक भी नहीं छोड़ा...ज्यों खींचे मेरे बाल तुमने? मैं नहीं खाऊंगा तुम्हारे हाथ की रोटी मरासी.. परे चला जा मुझसे...दूर हो जा...जा...जा मैं नहीं खाऊंगा रोटी...जा...साला मरासी...।”

मैं रोने ही वाला था। मन बिल्कुल ही ढह चुका था। मैं अपने कमरे में आया। ढीली चारपाई पर लेट गया और सोचने लगा, “कहां आ फंसा हूँ मैं...इससे तो मुंशी वाला काम ही सौ-गुना अच्छा था...तूंबी वाला काम भी बुरा नहीं था...भोगों और शादियों पर गाता था...शान अलग...पैसा अलग...चिज़ भी अपनी पट भी अपनी...इस जंजाल में ना पड़ता तो अच्छा ही था...मेरी यहां से जान छूटे...घर जाऊं।”

साहब के कई-कई रंग सामने आ रहे थे। कहीं अच्छा, कहीं बुरा...कहीं बहुत अच्छा कहीं बहुत बुरा...! कैसा अफसर है...पदवी कितनी बड़ी है, जज! वो भी कोई छोटा-मोटा जज नहीं...एडीशनल ज़िला और सेशन जज...और करतूतें कैसी? वाह ओ आदमी तेरे रूप अनेक!

मिलने लगीं जज से गालियां

“ओए, झाड़ु संवारकर नहीं लगाया...यह पतीला अच्छी तरह नहीं धोया...भैंस के नीचे गोबर पड़ा है...पज़े नहीं उठाए...बर्तन मत बखेरा करो...सही तरह रखा करो...भूतों का बाड़ा बना रखा है घर को...वो देख जाले नहीं उतारे...कितने-कितने बड़े जाले...घने...उजाड़ की निशानी होती है जाले ओए उल्लू...?”

साहब छोटी-छोटी बात को कुरेदता। मेरा किया हुआ कोई काम पसंद ना आता साहब को। मैं आगे से, “हां जी...सर जी, हां जी-जी।” करता रहता, फिर साहब गरमी से खुद ही धीरे-धीरे नरमी धारण कर लेता। अब मैं ज़्यादातर चुप ही रहता था। कभी-कभी जब मैं कोठी में अकेला रह जाता था तो अकेला बैठकर रोने को बड़ा मन करता...मैं बुरी तरह परेशान हो जाता था।

एक दिन साहब को अचानक चंडीगढ़ जाना पड़ा। रात को फोन आया था। साहब ने रात को ही अपना अटैचीकेस तैयार करके रख दिया था। सुबह ही तैयार होकर...दाढ़ी पर ठाठा बांधकर मेरा दरवाज़ा खटज़टाया, “ओए उठ जा...बहुत सो लिया...उठकर चाय बना...और मेरी पगड़ी की पूनी करवा...मुझे जल्दी जाना है।”

साहब जल्दी में था। जल्दी-जल्दी पगड़ी की पूनी करवा रहा था, “खींच भई खींच...खींच संवारकर...मेरे हाथ से पगड़ी का पकड़ा हुआ कोना छूट गया।”

“दुर फिटे मुंह! मिट्टी लगा दी मेरी पगड़ी को...हाथ टूट गए हैं तेरे...?”

“सर जी, ठंड है ना...हाथों को ठंड लग रही है...तभी तो छूट गई...।”

“अच्छा ? काम के समय ठंड लगती है, टुंग-लुंग-लुंग करने के लिए कैसे चलते हैं तेरे हाथ...सारा दिन...तुज्जहारे हाथ काट दूंगा मैं... ?।”

साहब मेरी तूंबी के पीछे पड़ गया था। बात-बात पर तूंबी का ताना देता था। वैसे मैं साहब की झिडकियों, तानों की कम ही परवाह करता था। भौंकता है तो भौंकता रहे।

कई बार साहब को खिझाकर मुझे खुशी मिलने लगती। अगर कहीं मैं ज्यादा ही चुपचाप रहता तो साहब कह देता, “ओए तूंबी मास्टरा, आज तो तुज्जहारे पेंच ढीले हैं ओए...ज्या बात है ? ला...ला तूंबी...गा गाना-वाना कोई।”

मैं तूंबी उठाता, बेमने मन से कोई बेसुरा-सा गीत गा देता। साहब को वो भी सुर में ही लगता था। “बेसुरे आदमी को संगीत भी बेसुरा ही अच्छा लगता है।” यह बात मैंने किसी बड़े उस्ताद लोक-गायक से सुन रखी थी। उस उस्ताद गायक ने यह भी कहा था, “आजकल तो ज्यादा श्रोता बेसुरे ही हैं, तभी तो वे बेसुरों को चाव से सुनते हैं। सुरीले श्रोता कम हैं और सुरीला गाने वाले भी तभी कम हैं।”

जब साहब पैग पर पैग चढ़ाता...उसकी सुध-बुध गुम हो जाती...बेसुरियां मारने लगता था तो मैं सोचता था कि अब इसे सुर में गाना सुनाने की ज्या जरूरत है ? मैं भी इधर-उधर की बेसुरियां मारकर समय बिताने लगता तो साहब उन बेसुरियों पर भी ‘वाह-वाह’ करता जाता।

साहब पगड़ी बांधकर तैयार हुआ। दिन अभी ज्यादा नहीं चढ़ा था। चंडीगढ़ को पहली बस जानी थी।

“जा ओए रिज्शा लेकर आ...जल्दी आना...और रिज्शेवाले से पैसे पहले तय कर लेना।”

मैं बाहर सड़क पर आया। रिज्शेवाला कोई भी दिखाई नहीं दे रहा था। जैसे आज सारे रिज्शेवाले पकड़कर जेल में डाल दिए हों। थोड़ा आगे गया तो एक रिज्शेवाला खेसी की बुज्कल मारे खटारा-सा

रिज्शा लेकर जा रहा था। मैंने सोचा, “साहब जरूर खीझेगा...कहेगा...रिज्शा भी ढंग का नहीं मिला तुज्हे...फिर कहेगा, इतनी देर कहां लगा आया...चलो यही ले चलता हूं। पांच रुपए में एक सवारी का अड्डे तक सौदा तय हो गया।”

“सर जी, रिज्शा आ गया जी।”

“चलो फिर उठाओ अटैची...।”

अटैची रिज्शा में रखकर मैं थोड़ा हटकर खड़ा हो गया था।

“चल अब बैठ...खड़ा ज्यों है ? अड्डे से लौट आना...चल साथ...।”

जब मैं रिज्शा पर बैठा तो रिकशेवाले ने जर्दे से भरे मुंह से फरमाया, “एक सवारी का पांच कहा था...दो के तो दस लगेंगे, पांच और...।”

मैं कछ बोलता, साहब बोला, “अरे यह सवारी नहीं है...यह तो मेरा अर्दली है...वो भी आधा...छोटा-सा तो है।”

साहब की कही इस बात की रिज्शेवाले को कोई समझ नहीं आई...वह रेट बढ़ाने पर अड़ गया था तो साहब फिर बोला, “हूं, हवाई जहाज है या रिज्शा ? चलो जल्दी, पहले ही लेट हूं मैं...।” साहब ने खीझकर रिज्शेवाले को दांत भी पीसे।

जब रिज्शा बीमारों की तरह झूलता हुआ चलने लगा तो साहब ने मेरी ओर देखा, “बात सुन...तुझे अज्जल कब आएगी ? सारे शहर में तुझे कोई रिज्शा नहीं मिला ढंग का ? इससे अच्छा था पैदल चले जाते...जल्दी पहुंचते।”

“सर जी, मैं तो सभी ओर देखकर गया था...कोई मिला ही नहीं जी...सर जी...यह जो भईए हैं ना जी...यह रात को लेट ही सोते हैं...चावल खाते रहते हैं...फिर सुबह भी जल्दी नहीं उठते रिज्शेवाले...चावल खानेवाली जाति...तभी तो नहीं मिला मुझे कोई...अगर अच्छा मिल जाता तो...।”

“अच्छा-अच्छा, अपने से ही ना बातें जोड़ा कर...अगर भईए

चावल खानी जाति है तो तुम दिमाग खानेवाली जाति हो...चौबीसो घंटे मेरा दिमाग खाते हो...अड्डे पर देखना कैसे धक्केखाते फिरते हैं रिज्शेवाले...सोए नहीं उठते, तेरे जैसे हैं सारे...तू भी उठाए नहीं उठता...बारह बजे उठता है।”

“ओ चल भई चल...चला भी रिज्शा...वहीं ढिचक-ढिचक कर रहा है।” साहब बोला।

भईया तेज़-तेज़ पैडल मारने लगा। अड्डा थोड़ी ही दूर रह गया था। रिज्शे की चेन उतर गई। “लो...साले रिज्शे के...अब चेन उतर गई...जल्दी कर जल्दी...चेन चढ़ा...।”

साहब मेरी ओर भी कड़वी नज़र से झांका। मुझे डर था कि कहीं रिज्शेवाला भईया, साहब को कुछ उल्टा सीधा ना कह दे। फिर कलेश पड़ जाएगा। साहब तो किसी कीमत पर भी टलने वाला आदमी नहीं है। ज़ईए को ज़्या पता कि यह माननीय जज साहब हैं।

अड्डा आ गया था। साहब ने पर्स से दस रुपए निकालकर भईए को पकड़ाए। चंडीगढ़ वाली बस खड़ी थी। वैसे सवारियां उसमें कम ही बैठी हुई थीं। हम पिछले दरवाजे की ओर हुए तो वहां कंडक्टर ने साहब को पहचान लिया। वह भी अपने महकमे के किसी केस में साहब के पास पेशी भुगतने आता रहा था।

“जनाब जी, सत श्री अकाल जी...ओ जी...चंडीगढ़ ही जाना है, आइए अगली सीट पर।”

कंडक्टर ने अपने गले में डाले कपड़े से दो नंबर सीट साफ की। साहब उस पर जंच गए।

“निंदरे, तुम कोठी से बाहर कहीं न जाना...सुन लो...कहीं लेखकों के साथ ना घूमते फिरना मीटिंगों में...मैं चौथे दिन आ जाऊंगा...भैंस का ध्यान रखना...अच्छा? जाओ तुम कोठी।”

मैं अपने निराले संसार में गुम हुआ चलता-चलता कोठी आ गया था। दोपहर तक पढ़ता-लिखता रहा था ज्योंकि अब इस काम के लिए समय था। कोई रोक-टोक नहीं थी। मुश्किल से पीछा छूटा था

साहब से...साहब की टेप रिकॉर्डर में अपने कमरे में उठा लाया और हंस की कैसेट सुनने लगा...सुरजीत पातर की कलम से गीत हंस ने रूह से गाया :

दिल तां उदास ए जी
बाकी सब खैर ए
सुन्ने सुन्ने राहां विच्च
कोई कोई पैड़ ए...

यह गीत सुनते हुए मेरा दिल और भी उदास हो गया। गांव भी नहीं गया था...कितनी देर हो गई थी। मेरे मन में आया कि गांव ही जा आऊं। साहब तो चौथे दिन आएगा। मैं कल ही लौट आऊंगा। साहब को कौन-सा सपना आएगा कि पीछे निंदर गांव गया था।

शाम हुई तो मैंने साइकिल पकड़ा। कोठी के बाहर वाले गेट को ताला लगा, चल पड़ा। गांव के लिए अभी शहर से निकल ही रहा था कि आगे आते एक लेखक सज्जन मिल गए, “यार...जब से अर्दली भर्ती हुए हो, मिलसे से भी गए। कहां फंस गए तुम, चलो चलें...आज मुशायरा है, मैं जा रहा हूं वहां। तू भी चल।”

गांव जाने का इरादा छोड़कर मैं मुशायरा सुनने चल पड़ा। मुशायरे में बड़े-बड़े शायर पहुंचे हुए थे, बहुत रौनक लगी हुई थी। शायरों को सुनकर मेरी रूह खुश हो गई थी। मन को कुछ ठंडक-सी मिली थी। हालांकि मुशायरा सुनते हुए भी मुझे डर था कि कोठी में कोई नहीं है, कहीं चोर-उच्चका ही ना घुस आए।

फिर सोचा कि अगर चोर घुस भी आए, तो साहब का ज़्या ले जाएंगे? साहब तो खुद बड़ा चोर है। फल फ्रूट तो उसे रीडर देकर जाता है। दूध के पैसे भी पहले वही देता था। राशन नाजर (स्टोर ज़्लर्क) देकर जाता है। अपना साहब के पास कुछ भी नहीं है। चोर ज़्या ले जाएंगे? साहब की कोठी से...यह सोचकर मैं अपने आप से हंसा।

देर रात तक मुशायरा खत्म हुआ। मैं कोठी आ गया। अब गांव

जाने का इरादा मेरा कल शाम का था। रात गांव रहकर सुबह-सुबह साहब के आने से पहले ही कोठी आ जाऊंगा।

गांव जाकर ऐसा लगा जैसे कैद काटकर आया होऊं।

डाक भी आई हुई थी लेखक दोस्तों की। डाक में एक सरकारी चिट्ठी भी थी, आल इंडिया रेडियो जालंधर से एक प्रोग्राम पेश करने के लिए। मुझे चिट्ठी देखकर खुशी भी हुई और फिक्र भी। खुशी इस बात की कि रेडियो पर गाना है और फिक्र इस बात का कि पता नहीं साहब जाने दे या न। मुश्किल से तो प्रोग्राम मिला है। लोक-गाथाएं गानी थीं।

माँ और बापू को भी काफी दिनों बाद मिला था...वे भी बड़े खुश हुए। सो गांव में रात काटकर रेडियो वाली चिट्ठी झोले में डालकर साइकिल शहर की ओर भगा लिया।

अपनी ही सोचों में गुम और तेज़-तेज़ साइकिल चलाता हांफता जब मैं कोठी के सामने पहुंचा तो जेब से चाबी निकाली ताला खोलने के लिए, चाबी किसे लगाता? ताला तो वहां था ही नहीं। मैं घबरा गया कि ताला कहां गया? कौन ले गया ताला? अंदर से कुंडी लगी हुई थी...दीवार फांदकर अंदर गया, बरामदे वाला दरवाज़ा भी अंदर से बंद था, उसका ताला भी पता नहीं कहां था...हैं, यह ज़्यादा? अंदर कौन आ घुसा? कहीं साहब ही तो नहीं आ गया रात को? मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था।

भैंस कोठे से बाहर निकाली और जान-बूझकर मैं भैंस को ऊंची-ऊंची “हे-हे-हे” करने लगा। मेरी आवाज़ सुनकर साहब ने बरामदे वाला दरवाज़ा खोला।

“कहां से आया...तेरी...ओए...।”

साहब ने दरवाज़े के पीछे पड़ा डंडा निकाल लिया था। मैं सिर झुकाए खड़ा था। साहब गालियां दिए जा रहा था। डंडा मारने की कसर तो बस यूं ही रह गई थी, अगर मैं साहब के ज़्यादा नज़दीक होता तो डंडा पड़ ही जाता।

“हरामी कुज़े...जब मैं तुज्हे कहकर गया था कि तू कहीं नहीं जाएगा...ज्यों गया तू...तोड़ू तुज्हारी टांगें साले...बड़ा आया गवइया? मैं पूछता हूं कहां से आया...?”

“सर जी गांव गया था।” मेरे मुंह से मुश्किल से आवाज़ निकली।

“अच्छा? कौन मर गया था गांव? हैं? ओए ज़्यादा था गांव में? ज़्यादा था ओए? किसका न्यौता आया था तुझे गांव से? बोल अब...बोल मर...बोलता ज्यों नहीं ओए अब...साला भांड कहीं का...अब ज़बान कट गई तेरी? बोल?”

मैं रोने लगा।

“नाटक ना कर मेरे सामने...पाखंडी? मूर्ख पल्ले पड़ गया मेरे...कंजर मुझे गफलत में डाले रखता है...मुझे कुछ भी नहीं समझता...।”

बोलता-बोलता साहब अंदर चला गया। मैं बहुत उदास होकर बरामदे की सीढ़ियों में ही बैठ गया था। अपने आप पर रोना आ रहा था कि कहां ला फेंका है किस्मत ने मुझे।

अब रेडियो वाले प्रोग्राम का फिक्र और भी बढ़ गया था कि साहब बिल्कुल ही नहीं जाने देगा। अभी पांच दिन पड़े थे जाने में।

दिन गुज़रा। शाम को साहब बिल्कुल ठीक-ठाक हो गया था, जैसे सुबह की सारी बातें भूल भुला गई हों उसे। असल बात यह थी कि साहब का मेरे बिना सरता जी नहीं था और ना ही मेरा साहब के बिना। मैं उसकी अर्दल में था, उसका काम करने के ही मुझे पैसे मिलते थे। अर्दली और अदालत का रिश्ता बड़ा गहरा होता है...जैसे मुंशी और थाने का रिश्ता।

शाम हुई...साहब मूड बना रहा था। मैंने ज़्यादा से लंबी-सी दो मूलियां उखाड़ीं...धोई...छीलकर काटीं...ऊपर नमक छिड़का और साहब के सामने मेज पर रख दीं।

“ओए आ भई निंदरा, ज़्यादा कहती है तेरी तूंबी फिर? करती है टुंग-लुंग-लुंग ओए।”

साहब मूली खाकर खुश था। मैंने मौका संभाला...रेडियो वाली चिट्ठी जेब से निकाली और साहब की ओर बढ़ा दी।

“ओए ज़्या है यह?”

“सर जी...रेडियो स्टेशन से आई है चिट्ठी जी।”

साहब चिट्ठी पढ़ रहा था, “अच्छा-अच्छा, वहां प्रोग्राम देना है तुमने? किस दिन है? अच्छा...पांचवे दिन?” साहब ने चिट्ठी से तारीख पढ़कर कहा।

मैं साहब को मनाने के लिए उतावला था, “सर जी... भेज दोगे मुझे जी?”

“ओए वो है ना कंजर का...किशन, अभी आया नहीं, बैठा और आगे-आगे छुट्टी बढ़वा रहा है...और तुम चले गए तो काम कौन करेगा यहां?”

“नहीं जी...सर जी...मैं तो सुबह-सुबह ही जाऊंगा यहां से और सीधा जालंधर और फिर दोपहर को रिकॉर्डिंग कराकर...सीधा यहां पहुंच जाऊंगा...सर जी मिन्नत है जी... भेज दो जी...।”

“ओए अभी चार-पांच दिन पड़े हैं, देखेंगे फिर...ओए पहले मुझे सुना जो वहां गाना है...सुना तो मुझे वहां ज़्या गाएगा...ला ओए तूंबी ला...ला...तूंबी।”

अब मैं पूरा खुश था...एक तरह से साहब की ओर से इजाज़त मिल ही गई लगती थी।

“सर जी...मैं वहां लोक-गाथाएं सुनाऊंगा...एक तो ‘पूरन भगत’ की गाथा और दूसरी ‘सोहणी-महीवाल’ की और तीसरी ‘सरवण भगत’ की। यह तीनों मेरे गुरु यमला जी की लिखी हुई हैं...लो...सुन लो पहले...मैं ‘पूरन भगत’ की सुनाता हूँ पहले...” मैं गाने लगा :

जांदा पूरन वेख के
अच्छरां डिग पई गश खा
बच्चेया शेर दे मुंह वे बकरी

मैं कीकण लवां छुड़ा...
ओदर लूणा चड़ गई महल ते
तज़ी मल्ल खलोती राह
वे तू ज़रा कु ठहरीं पूरनां
मैं मिलण आई तेरी माँ
वे तू कीता पाया आपणा
मैं जुल्म कमाया ना

मेरा उत्साह बढ़ गया होने के कारण तूंबी खूब टुनक रही थी। साहब सिर मार-मारकर झूम रहा था।

“ओ हो! ओ निंदरया...यह बड़ी चंदरी निकली लूणा कंजर की...इसने पूरन मरवाया था बेचारा...उसकी माँ रोती थी अच्छरां...ओ हो...बेचारी...ओए यही गाथा गाना वहां पूरन की।”

पूरन की गाथा सुनते हुए साहब का मन जैसे वैराग से भर गया था। उसने एक और अच्छा-सा पैग बनाकर अंदर फेंका, “हा...कंजर की लूणा...ओ-हो...।”

“सर जी...रख दूँ तूंबी अब?”

“ओए रख दे पुज़र निंदर...रख दे...तूंबी रख दे...कंजर की लूणा...कितनी कुज़ी निकली भूतनी साली...डायन...पूरन मरवा दिया...ओ-हो...सौतेली थी ना...तभी मरवा दिया...ओ देख कैसे रोती है अच्छरां बेचारी...बेटा जाता देखकर...दिल का टुकड़ा कल्ल कर दिया पापी राजा ने।”

बोलता-बोलता साहब मूलियों के टुकड़े भी उड़ाए जा रहा था, “करच...करच...करच।”

रेडियो पर जाने की मेरी तैयारी पूरी थी। झोले में तूंबी और जो तीन लोक-गाथाएं गानी थीं...कागज़ों पर लिखकर...डाल रखी थीं।

मुंह अंधेरे उठकर मैं चाव से तैयार हुआ। चाय बनाकर साहब को पिलाई और साहब के लिए परांठे बनाकर हॉट केस में रख दिए।

कमरे में जाकर साहब के पांव छुए।

“ओए जल्दी लौटने की करना...”

“अच्छा सर जी, मैं तो आया समझो।”

अड्डे पर आया...सीधी बस मिल गई थी और समय पर जालंधर पहुंच गया था। आगे रिकॉर्डिंग भी समय पर हो गई, वहां काम करते अपने दोस्तों को भी मिल लिया। रेडियो पर गाने के लिए मानदेय का चेक भी मिल गया। मैंने अपने ठिकाने पर पहुंचने के लिए बस पकड़ ली। रास्ते में भी मैं साहब के तरह-तरह के रंगों के बारे में सोचता आया था। सारा ध्यान साहब, कोठी, भैंस और उसके बच्चे और साहब के खाने की ओर ही लगा रहा था।

“सर जी...सत श्री अकाल...रिकॉर्डिंग बहुत अच्छी हो गई जी...कमाल हो गई...यह चेक भी मिला...प्रोग्राम कल आएगा रेडियो पर...हम सुनेंगे जी...सर जी...मैं देखो कितनी जल्दी आ गया...आपसे कहा था ना कि जल्दी आ जाऊंगा।”

साहब मुस्कराया “ना बात सुन ओ बड़े चालाक...जो चेक मिला है...यह तो तुज्हारी अतिरिक्त कमाई है...एक तरफ सरकारी नौकरी और एक तरफ कलाकारी...ओए ऐसे नहीं चलेगा...कोई पार्टी-पूटी मेरी? मूर्ख आल इंडिया रेडियो पर गाकर आया है...कोई मखौल की बात थोड़े है...हैं ओए? बोलता नहीं अब? कमाल है भई...हैं ओए...।”

साहब पूरा खुश था। सब बातें हंसी-हंसी में कह रहा था। मैं सिर झुकाए सामने खड़ा हंस रहा था।

लग नहीं रहा कि यह वही साहब है...जो सुबह शाम मुझे मन-मन की गालियों और झिड़कों से नवाजता रहता है।

जामुनों की ऋतु!

जामुनों की बहार आती तो सरकारी कोठियों में बेशुमार जामुन होते! बाज़ार में सौ रुपए किलो और अगर किसी ने पाव भर लेने हों तो तीस के! शहर की पुरानी सरकारी कोठियों और सर्किट हाऊसों में वृक्ष जामुनों से भरे खड़े होते हैं। जज साहब की कोठी में जामुनों के तीन लंबे और घने वृक्ष थे। आसपड़ोस के अफसरों की कोठियां भी जामुनों के वृक्षों से घिरी खड़ी थीं। जब मैं और जज साहब कचहरी आ जाते तो साथ वाले सरकारी मकानों से बच्चे छोटी दीवार फांदकर आते और जामुन तोड़कर ले जाते। जज साहब कहते, “जा, जिनके बच्चे आ रहे हैं, उनके घर उलाहना देकर आओ...।”

एक दो बार मैं उलाहना देने गया तो एक घर की मोटी औरत मेरे गले पड़ गई, “जज ज्या आचार डालेगा इतने जामुनों का? ज्या हुआ अगर हमारे बच्चे चार जामुन तोड़ लाए तो...आग लगाए नहीं खत्म होंगे इतने जामुन...अपने जज को कह कि शाम को अपनी कोठी के सामने ठेला लगा लिया करे जामुनों का...।”

मोटी औरत से सिर की बात सुनकर मुंह लटकाकर मैं वापस आ गया। साहब पूछने लगा, “हां भई, दे आया उलाहना?”

मैंने दिलेरी से कह दिया, “नहीं सर जी, बल्कि उलटा लेकर आया हूं...शुक्र है औरत ने मेरा सिर नहीं फाड़ दिया।”

“ज्या कहती है?”

“सर, मेरे पास ही रहने दीजिए जो कहती है।” इसके बाद साहब नहीं बोला।

एक दिन साहब कहने लगा, “सारे के सारे जामुन इकट्ठे कर लिया कर...एक भी जामुन फिजूल ना जाए...फ्रिज में रखा कर...सुबह

जब मोहाली वाली बस में दूध देने जाते हो...तब साथ जामुन भी ले जाया कर...बच्चे खा लिया करेंगे वहां...”

सुबह मैं भैंस दोहकर केनी में दूध डालकर, साइकिल के पीछे लादकर बस अड्डे पहुंचता था। चंडीगढ़-मोहाली जाने वाली पहली बस लगी होती। ड्राइवर के पैरों के पास दूध वाली केनी रख देता। एक दिन जब जामुनों वाला बड़ा लिफाफा रखा तो ड्राइवर खीझ गया, “जज साहब ने तो बस मोल ही ले ली है...सारी जगह रोक ली...मैं ब्रेक कैसे लगाऊंगा...जलच कैसे दबाऊंगा...रेस कैसे दूंगा...”

मैं चुपचाप सुनता रहा। किसी ना किसी तरह ड्राइवर अब दूध के साथ जामुन भी ले जाने लगा था। मोहाली अड्डे पर साहब का घरेलू नौकर जयराम पहले ही खड़ा बस का इंतज़ार कर रहा होता। दूध की केनी और जामुनों वाला लिफाफा उतारकर घर ले जाता। उधर बीबी जी आसपास की कोठियों में जामुन बांटकर पड़ोसनों को खुश करती रहती और इधर जज साहब मुझे फालतू के काम में डालकर दुखी करता रहता। साहब की कोठी में मैंने कई अलग-अलग तरह की सज्जियां भी लगा रखी थीं। खाने वाला साहब अकेला! सो, बोरी में डालकर यह ड्राइवर के हवाले कर देता। सच्ची बात यह है कि ड्राइवर अब तंग आ चुका था साहब का सामान ढो-ढोकर! अब रहती कसर जामुनों ने पूरी कर दी थी।

एक दिन मैं भैंस दोहता हुआ लेट हो गया था, उधर से बस चलने का समय हो गया। ड्राइवर खड़ा इंतज़ार करता रहा। मुसाफिर शोर मचाने लगे। जब मैं अड्डे पर पहुंचा तो वह मुझे जैसे खाने को पड़ा, “यार, आप लोगों ने मजाक ही बना लिया है...हम खड़े इंतज़ार कर रहे हैं...तुम्हारे पैर बांधे हैं किसी ने?”

उस दिन सुबह के समय मेरे मुंह से सहज ही निकला था, “पैर ही नहीं मेरा तो जीवन ही बंधा पड़ा है इस नौकरी में...सुबह तीन बजे का उठा हूं...आज साली भैंस ही नहीं पसानी, मैं ज़्या करूं?”

ड्राइवर कहने लगा, “चल छोड़...तुम किसी दिन भैंस ही खोलकर ले आ...बस में चढ़ाकर मोहाली छोड़ आएंगे।”

कंडक्टर-ड्राइवर और मुसाफिर हंस पड़े। मैंने जामुन और दूध ड्राइवर के पैरों में रखा और साइकिल कोठी की ओर भगा लिया।

आज रविवार था। जज साहब बड़े हल्के-फुल्के मूड में बैठे थे। मैंने ताज़ा जामुनों पर नमक छिड़का। प्लेट साहब के आगे जा रखी। वह जामुन खाने लगे। इतने में साहब का स्टैनो (जो अज़सर ही मेरे साथ ईर्ष्या करता था) आ गया। साहब उससे लेकर ज़रूरी फाइल पढ़ने लगा और साथ ही स्टैनो को इशारा किया कि वह भी प्लेट में से जामुन खा ले। स्टैनो ने एक जामुन उठाकर मुंह में डाला और ‘न’ में सिर हिलाया। मेरी ओर कनखियों से झांका। दूसरा जामुन मुंह में डालता हुआ स्टैनो बोला, “सर यह भी कोई जामुन हैं? जामुन तो जी फिरोज़पुर के होते हैं...आहा-आहा...सर जी देखना कभी खाकर फिरोज़पुरी जामुन...सर बड़े स्वाद हैं जी फिरोज़पुरी जामुन...मोटे-मोटे...काले-काले...।”

स्टैनो की बात सुनकर साहब ने फाइल पढ़नी छोड़ दी और मुझे मुख़ातिब हुए, “ओए तूंबी वाले, आज संडे है और तू खाली भी है...जा...फिरोज़पुर से जामुन लेकर आ।”

साहब का हुज़म सुनकर स्टैनो मुस्कराया। मुझे गुस्सा आया कि यह साला नया ही स्यापा डाल गया। अब मैं फिरोज़पुर जाऊं जामुन लेने के लिए? साहब ने फाइल पर दस्तख़त कर दिए थे। स्टैनो चला गया था। मैंने सोचा साहब शायद भूल जाएगा। मैं कोठी के और काम करने लगा। बीस मिनट बाद साहब ने फिर पूछ लिया, “ओए गया नहीं तू फिरोज़पुर जामुन लेने।”

“जा रहा हूं सर, जा रहा हूं..।”

मैंने हल्के मन से कहा और कोठी से बाहर आ गया था। मेरे पास तो बीस रूपए ही थे। वह किराया लग जाता। आगे कौन-सा मेरी मौसी का बेटा बैठा था, जो जामुन मुझे मुज़्त में दे देता? मैं किसी से उधार पैसे लेने की सोचने लगा। सोचता-सोचता चौक में आकर बस के इंतज़ार के लिए खड़ा हो गया। छोटे जज साहब का रीडर खुराना

स्कूटर पर आता नज़र आया। यह खुराना बड़ी चीज़ था, सारे वकील उसे मानते थे। बड़ा तीखा, सेठ खुराना। मिनटों में काम बना देता, देर के बिगड़े हुए काम! मैंने आवाज़ दी, “बाऊ जी...बाऊ जी...” वह रुक गया। नज़दीक जाकर बताया, “पचास रुपए उधार दो...साहब का स्यापा करने जा रहा हूँ। फिरोज़पुर से जामुन लेने जाना है...”

खुराना जी ने कहा, “ज़्या बात है, अपने शहर में जामुनों का अकाल पड़ गया है?”

मैंने बताया, “जज साहब कहते हैं कि मुझे तो फिरोज़पुरी जामुन ही खाने हैं।”

खुराना जी को आइडिया आया। उन्होंने तीस रुपए मुझे देते हुए कहा, “यह लो...और यहीं से ख़रीद लो, कौन-सा जामुनों पर लिखा हुआ है कि यह फिरोज़पुरी जामुन हैं? पर ऐसा करना...कोठी अभी मत जाना...कम से कम तीन घंटे बाद जाना...उतनी देर बाहर घूम-फिर लो, अपने निजी काम कर लो।”

खुराना जी की स्कीम मुझे बहुत अच्छी लगी थी। मैं तीन घंटे अपने पुराने दोस्तों को मिलता रहा और आख़िर बाज़ार से मोटे-मोटे...काले-काले किलो जामुन तुलवाकर कोठी पहुंच गया। जज साहब जामुनों वाला लिफाफा देखकर बड़े प्रसन्न हुए। प्लेट में जामुन डालकर साहब के सामने रखे तो वह ख़ुश होते हुए बोले, “वाह भई वाह...ज़्या बात है...ज़्या कहने हैं...मोटे-मोटे हैं भई फिरोज़पुरी जामुन...” साहब ने जामुन मुंह में डालते कहा, “भई तूंबी वाले, यह फिरोज़पुरी जामुन अपने शहर के जामुनों से कहीं ज़्यादा मीठे हैं...वाह भई वाह...मात करते हैं अपने शहर के जामुनों को भई ये तो...शाबाश भई निंदर सिंहां...ओ तूंबी वालेया।”

जज साहब बहुत प्रसन्न थे और मैं भी अंदर ही अंदर ख़ुश हो रहा था...खुराना जी की दी स्कीम के वारे-वारे हुए जा रहा था।

साहब का साढ़ू और साली

किशन छुट्टी काटकर आ गया था। साहब ने उससे पूछा, “तू घर बैठा छुट्टी बढ़ा रहा था...तुझे यहाँ की कोई फिक्र नहीं...तुम लोग सिर्फ अपना ही फायदा सोचते हो, बनियों की तरह।”

किशन ने जवाब दिया, “साहब जी बात यह नहीं, मैंने अपनी ज़रूरत के लिए छुट्टी ली थी...बहन के घर में काम था...और मेरी छुट्टी बनती थी...अभी भी पड़ी है...”

साहब खीझ गया, “अगर पड़ी हैं तो और काट आ...मेरे पास धक्के खाने आया है?”

कुछ दिनों बाद किशन की ड्यूटी साहब ने कचहरी से हटाकर पूरा समय कोठी में लगा दी।

किशन इस बात से और खफा हो गया था और उसने दो महीनों की छुट्टी लिख भेजी। जब मुझे पता चला, गुस्सा तो मुझे बहुत आया पर मैं कर कुछ ना सका। मैं फिर अकेला रह गया...। किशन के आ जाने से मुझे सुख की सांस मिली महसूस हुई थी।

साहब का साढ़ू तहसीलदार लगा हुआ था। उसका साहब को फोन आया। उन्हें मिलने के लिए आना था। दो सरकारी छुट्टियाँ थीं। साहब ने कहा, “मेरे साढ़ू-साली की सेवा करना...इधर-उधर की मत करते रहना जैसा पहले करते हो। उनकी पूरी सेवा करनी है तुमने।”

“सर जी...आप तो मुझे बिल्कुल पागल समझते हैं...इतना मूर्ख नहीं हूँ मैं जितना आप समझते हैं।”

कार कोठी के सामने आकर पां-पां करने लगी। मैंने भागकर गेट

खोला। मारुति अंदर आई। साहब की साली-सादू मिले साहब को। साहब खुश था।

साहब की साली का बड़ा लड़का कुछ बड़ा था। दूसरे दोनों छोटे लड़का-लड़की बड़े शरारती थी। वे आते ही खुली जगह देखकर इधर-उधर भागकर खेलने लगे। बहुत बड़ा एक पतीला था सिलवर का...जिसमें मैं रात को दूध उबालता था या कभी पानी गर्म करता था, पतीला आंगन में दीवार के साथ टेढ़ा पड़ा हुआ था, बच्चे पतीले के साथ ही खेलने लगे। लगता था जैसे उन्होंने इतना बड़ा बर्तन कभी पहले नहीं देखा हो। वे पतीले को ठोकरें मार-मारकर चलाने की कोशिश करने लगे। उनकी माँ बोली, “ओए होए...ज्यों आप लोग आते ही अपने मौसा जी के बर्तन तोड़ने लगे...हटो...मौसा जी डांटेंगे। हट जाओ...टिक जाओ।”

शहरी बच्चे इतने ढीठ थे कि टिककर बैठ नहीं सकते थे। शाम हुई...मैं रसोई में काम करने लगा। साहब और उसका सादू मूड बनाने बैठ गए। मूलियां काटकर मैं उनके आगे रख आया था। साहब की साली ‘हिली हुई भूतनी’ की तरह कोठी में भागी फिर रही थी। वह रसोई में चक्कर लगाती...फर्श पर पैर घसीट-घसीटकर चलती। उसे जैसे चैन नहीं था। बिना वजह वह चक्कर लगा रही थी। रसोई में उसका काम कोई भी नहीं था...काम तो सारा मुझे ही करना था और कर रहा था। वह भूखी डायन की तरह खाली पड़े बर्तनों में झांक-झांककर मेरा फालतू में सिर खा रही थी, “ज्या कर रहे हो? ज्या बनाना है? कैसे बनाओगे? वो ज्या है? यह ज्या है? इसमें ज्या पड़ा है? यह कहां से लाए? यह यहां ज्यों रखा हुआ है? हैं?”

‘हिली हुई डायन’ नहीं थी तो और ज्या थी साहब की साली?

मैं प्याज़ काट रहा था, वह फर्श पर जोर-जोर से चप्पलें घसीटती हुई आई और बोली, “जाओ, तुम्हें जज साहब बुला रहे हैं...जाओ उधर।”

मैं चाकू और आधा कटा प्याज़ रखकर गया...साहब बोला, “ओए तूंबी मास्टरा...हमारे तहसीलदार साहब कहते हैं भई गाना-वाना ही सुना दो कोई...मैंने इन्हें बताया कि हमारा लड़का गाने गाता है यमले के...तूंबी बजाता है...जा ला उठाकर तूंबी...सुना कोई गाना बढ़िया-सा...।”

मैं सोच रहा था कि आज भी साहब मेरा खूब मज़ाक उड़ाएगा। अगर गाने से ना करूंगा या कोई बहाना बनाऊंगा तो फिर गालियां देगा। मैं तूंबी उठा लाया...उनके सामने एक कलाकार की तरह नहीं बल्कि एक मुजरिम की तरह खड़ा हो गया...साहब का सादू तूंबी देखकर खुश हो गया...“भई यह तो असली तूंबी है इसके पास...मैंने तो सोचा था कि वैसे ही होगी नकली सी...सुना बेटा बजाकर, सुना...।”

“आप देखना...तहसीलदार साहब। यह अभी यमले जट्ट की नकल बिल्कुल उसी तरह करके दिखाएगा...उसका चेला रहा है...बिल्कुल उसी तरह आवाजें निकालता है...चल अब गा भी...।”

साहब ने गिलासों में पैग डालते हुए हुज़्म लगाया। उसके बराबर साली साहिबां (हिली हुई डायन) भी आकर बैठ गई थी और बिना वजह ही हंस-हंसकर अपने पीले दांतों की नुमाइश लगा रही थी।

छोटे लड़के ने कुर्सी से उठकर तूंबी के साथ लटकते लोगड़ी के फूल को हाथ मार-मारकर घुमाना शुरू कर दिया। मैंने तूंबी और ऊपर उठाई तो वह जिद करने लगा, “मज़्मी जी...फूल लेना है...वो फूल लेना है मुझे... फूल...मज़्मी ले दो इससे फूल।”

“नहीं रे नहीं...नहीं लेना फूल...चुप करके बैठ जा...मारूंगी मैं।”

बच्चा न हटा। रोने लगा, “फूल लेना है...मुझे फूल लेना है...मज़्मी फूल ले दो...मज़्मी फूल चाहिए...।”

साहब ने कहा, “ज़ई उतार दे फूल इसे...फूल दे दो...खुश हो जाएगा, तुमने फूल का अचार डालना है, दे दो बच्चे को।”

मैंने अनमने मन से तूंबी से फूल (जो मेरे उस्ताद जी की अनमोल निशानी थी) उतारकर दे दिया। बच्चे फूल लेकर बाहर आंगन में भाग गए थे। मेरा दिल जल-भून गया था।

“सर जी, कौन-सा गीत सुनाऊं?”

“ओ सुना दो यार...जो मर्जी सुना दो...हमारे तहसीलदार साहब और हमारी सरदारनी जी खुश होने चाहिएं...यह देख लो भाई अब...ये किस गीत पर खुश होंगे।”

“सर जी, मैं आज आपको मॉडर्न माहिए के कुछ टूप्पे सुनाता हूँ...लो सुनो...मैं गाने लगा हूँ :

सोने दा किल्ल माहीआ
साडे घरे रौला पै गया
आया बिजली दा बिल माहीआ।’

तीनों ही बेफिजूल हंसने लगे। तूंबी की टुनकार उनकी हंसी के शोर में खो गई थी। मैंने अगला टूप्पा गाया :

सोने दा किल्ल माहीआ
बस्सां दे किराए वध गए
सुफने विच्च मिल माहीआ

मैं गा रहा था तो साहब ने बीच में अपना ही तवा रखा हुआ था, “ज्यों भई...देखा तहसीलदार साहब...यह है ना पूरा मरासी है...है ना...मैं इस कंजर को रोज़ कहता हूँ कि तू मरासी है...और यह कंजर मानता ही नहीं मेरी...जी मैं तो क्षत्रियों का लड़का हूँ...यह हो ही नहीं सकता कि यह क्षत्रिय हो...मैंने कहा भी है कि भई क्षत्रियों के लड़के तूंबी नहीं पकड़ते...क्षत्रियों के लड़के तो तराजू का कांटा पकड़ते हैं...पज्के मरासी हो...मैंने कह दिया...यह पज्का मरासी है।”

साहब कचर-कचर करके मूली खाता हुआ खुद-ब-खुद बोल

रहा था। साहब के साढू का जैसे बीच में ही स्वाद खराब हो गया हो...उसने कहा, “लओ जी, सुनो तो सही जज साहब, आप आगे तो सुनो...वाह भई वाह...यह तो कमाल है...कलाकार है आपके पास तो...।”

मैंने माहीए का अगला टूप्पा गाया :

दो पज्जर अनारां दे
साडी गली लंघ ढोला
तेरे जुज़ीयां वी मारांगे...

साहब की मोटी साली की हंसी फूट-फूटकर निकल रही थी। वह हंसती-हंसती टेढ़ी-मेढ़ी हो रही थी। जिधर टेढ़ी होती, उधर ही सारा शरीर लुढ़क जाता। माहीया गाया गया। साहब बोला, “ओए मरासी...वो गा यार...यमले का...जो तुम गाते हो अजसर...अलहड़पुने विच्च लाईयां तोड़ निभावीं वे...मैं तेरी तू मेरा छड्ड ना जावीं वे...यह सुना।”

मैंने यह गीत भी सुना दिया तो साहब के साढू ने अपने पर्स में से सौ का नया नोट निकाला और मेरी ओर बढ़ाता हुआ बोला, “लो ज़ई कलाकार...लो तुज्हे ईनाम देते हैं।”

यह देखते ही जैसे साहब को सातों कपड़ों में आग लग गई हो, वह शोर मचाने लगा, “ओ हो...यार इसे किस बात का ईनाम ? यह तो यहां नौकरी करता है...रेडियो पर भी गा आता है...बहुत पैसे हैं इसके पास...ऐसे तो रोज़ ही गाता है...मैंने तो कभी इसे पच्चीस पैसे नहीं दिए...रहने दो यार...रहने दो...यह तो मुझसे ज्यादा पैसे वाला है...बड़ी शैतान की टूटी है यह मरासी...बहुत बुरी शै है...कुछ नहीं देना इसे।”

“ओ लो भई...मैं तो खुशी से दे रहा हूँ...ले लो बेटा...ले लो...यह कौन-सी बात है, लो तुज्हारा ईनाम है।”

मैं ना-नुकर करता रहा, फिर साहब भी बोल पड़ा, “चलो ले लो अब, नखरे ज्यों कर रहे हो।”

मैंने सौ रुपया झिझक से जेब में डाल लिया। “ओ देख मरासी, हमारे रिश्तेदार कितने खुले दिल वाले हैं...तुमने तो काट लिया दो मिनट में...मैंने तो तहसीलदार साहब इस कंजर को बीस बार कहा है कि तुम यही तूंबी लेकर बसों या रेलों में गाने गाओ तो पैसों का कोई घाटा नहीं रहेगा...टूटा-सा पकड़ ले एक हाथ में...पैसे ही पैसे...पर यह मानता ही नहीं मेरी...।”

साहब की साली और साढ़ू ऊंची-ऊंची हंसे थे। मुझे पता था कि साहब मेरा मजाक उड़ाए बिना रह ही नहीं सकता था।

साहब और साढ़ू देर रात तक बैठे दारू पीते शोर मचाते रहे। वे बैठे ही थे, साहब की साली आई और बोली, “बस करो अब.. ज्यादा ना पीओ...कहते हैं गुर्दे फेल हो जाते हैं।” साहब बोला, “होते हैं तो हो जाएं, मैंने कौन-सा बेचने हैं गुर्दे...तुम्हें ज्यादा फिक्र है मेरे गुर्दों का?”

फिर उसने फ्रिज खोली और बड़ी-सी गाजर बिना धोए ही निकालकर खाने लगी। खाते-खाते ही उनकी ओर फिर जा घुसी, साहब ने ऊंची आवाज़ में लड़खड़ाकर कहा, “ओ मेरी प्यारी साली, ज्यों खा रही हो गाजरें...फिर कहोगी जीजा जी की गाजरों ने मेरा पेट दर्द करा दिया...फिर बताओ मैं किधर जाऊं, मेरी साली। अगर तुम्हारे पेट में दर्द होने लगा, तो मैं मर जाऊंगा...आधी रात को कोई डॉक्टर भी नहीं मिलेगा यहां...।”

हंसी फैली। मुझसे भी रसोई में खड़े हंसे बिना ना रहा गया। ज्यादा संसार है इन पढ़े-लिखे और उच्च-ज्लास लोगों का...? मैंने नीची ज्लास वाले ने अपने आप से सवाल किया था। पलों में ही वह फिर पांव घिसट-घिसटकर चलती रसोई की ओर से भुजिया मुंह में डाले चली आ रही थी। मैं हैरान था कि साहब की साली तो जैसे जुगों-जुगों की भूखी है। बहुत मोटी थी, तभी तो अजल की खोटी थी। भुजिया चबाने के बाद रसोई में पड़ी मूलियों की ओर हुई और एक लंबी मूली

छीलने लगी। मूली ज्यादा, उठाकर मूला ही छीलने लगी थी। मूले के मोछे डालती हुई बोली, “अरे बात सुनो, ये मूलियां कहां से लेकर आए थे...बहुत स्वाद हैं ये मूलियां।”

मैं हैरान भी था और हंसी भी आ रही थी कि साहब की साली तो बहुत ही झल्लरी है। वह फिर एकदम बोली, “अरे तुम यहां रहकर ज्यादा करते हो? तुम तो किसी गाने वाली लड़की से शादी कर लो...दोनों स्टेजों पर जाकर गाया करो...तुम्हारी पत्नी तुम्हारी सेवा किया करेगी...मेरी बात मान और शादी करवा लो जल्दी, शादी की बड़ी मौज है...।”

साहब की साली जल्दी-जल्दी मूली खाती हुई बेरोक और फिजूल बोल रही थी। मैंने उसकी बात का जवाब देना मुनासिब ना समझा और दो टूक बात खत्म की, “बात यह है बीबी जी, ये आज के गाने वाले और गाने वालियां बेशर्मा की हद लांघ जाते हैं...लचर गीत...लुच्चे गीत गाते हैं और इसीलिए पैसे कमाते हैं...मैं तो इस तरह के कंजरखाने में न पड़ना चाहता हूं और ना ही गंदे गीत गाना चाहता हूं...ना मैंने किसी गाने वाली लड़की से शादी करवानी है। मैं तो फकीर-दरवेश यमले जट्ट का चेला हूं...उसने भी यही शिक्षा दी थी कि बेटा गंदे गीत नहीं गाने...मैंने ज्यादा लेना गंदे गीत गाकर...मेरी तो यही नौकरी अच्छी है।”

साहब और साढ़ू लड़खड़ाते और गिरते हुए रसोई की ओर आ रहे थे। साहब ने आज साढ़ू और साली के आने की खुशी में बहुत पी ली थी, जबान तुतला ज़रूर रही थी लेकिन समझ आ रही थी, “मेरे दोस्त, मैं बहुत बुरा आदमी हूं...मैं कुज़ी औरत के पांव ज्यों पकड़ूं जाकर? मैं नहीं पकड़ूंगा... आए...ना आए...मैंने ऐसी कई सुधारी हैं। बहुत केस आते हैं इस तरह के मेरे पास, तलाक मांगती हैं आ-आकर...मैं देता नहीं तलाक रुलाता हूं पूरा...ओ मैं जज हूं...जज सेशन मैं...।”

आज तो साहब अपनी रूठी हुई बीवी को याद कर रहा था। इस बात से पता चलता है कि साहब की अपनी बीवी से थोड़ा नहीं, बहुत

कलेश रहता है। इतना तो मुझे पता था कि बीबी का जब भी मोहाली से साहब को फोन आता था वो हमेशा झगड़ती ही थी। आज वह भावुक हुआ साढ़ू के सामने बीबी के पर्दे खोल रहा है।

रसोई में आते ही साहब मेरी ओर हुआ, “ओए मरासी, ओए मेरे बेटे... ओए तूंबी वाले, ओए ज़्या बनाया आज तूनें ओए? देख ओए, इन्होंने रोज़-रोज़ नहीं आना...इनकी सेवा अच्छी तरह करना...ओए ज़्या बना रहा है।”

साहब ढंके हुए पतीलों के ढक्कन उठा-उठाकर देख रहा था। सज़्जियां सब तैयार थीं। अब तो बस फुल्के ही बनाने वाले रहते थे और वो जब खाने थे, मैंने फटाफट बना देने थे।

“सब तैयार है ओए, रोटियां बन गईं या नहीं ओए? ओए लो भई आज तो मैं अपनी साली के हाथ की रोटी खाऊंगा...मैं...तो भई...मौका आज मिला है...मैं तो साली का फुल्का खाऊंगा...ओए निंदरया...आज तुम नहीं पकाओगे रोटी...मैं आज साली के हाथों की खाऊंगा।” साहब मस्ती में आकर शोर मचा रहा था।

अपने शराबी हुए जज जीजा के मुंह से अपनी प्रशंसा सुनकर साली भला कैसे खुश ना होती? वह तो पहले ही खुश हुई फिरती थी और अब और खुशी हो गई थी...फुल्के बनाने लगी। मैं पकड़ाने लगा। आज साहब से अच्छी तरह रोटी भी नहीं खाई जा रही थी...बस, यूं ही मूर्खताएं कर रहा था! जुग-जुग जी...आज तुमने जीजे की रोटी पकाई है...अरे साली, आधे घरवाली...यह तुम्हारा फुल्का, मैं सदके जाऊं तुम्हारे गोल-मटोल फुल्के के।”

साहब की साली और साढ़ू खुला-डुला हंस रहे थे और मेरा भी खुलकर हंसने को मन कर रहा था...पर मैं अपनी हंसी रोककर अंदर ही अंदर हंस रहा था।

तोहफे लेने-देने के दिन

जज साहब के रीडर ने सफेदी करने वाले घर भेज दिए...वो मोटा-मोटा-सा काम करके चलते बने। दिवाली में कुछ दिन ही बाकी थे। मैंने सोचा था कि साहब मोहाली अपने बच्चों के पास दिवाली मनाने जाएगा। मैं भी दिवाली अपने गांव अपने माँ-बापू के पास जाकर मनाना चाहता था। पर साहब ने कहा ही नहीं था कि बेटा मेरा बैग तैयार कर दो...मोहाली जाना है। मैंने सोचा...या फिर साहब के बच्चे ही यहां आकर दिवाली मनाएंगे...तभी साहब मोहाली नहीं जा रहा। जब दिवाली में दो दिन रह गए तो मैंने साहब से पूछा, “सर जी...मैं दिवाली पर अपने गांव जाना चाहता हूं...।

“नहीं-नहीं...तुम गांव नहीं जा सकते...यहीं रहना पड़ेगा कोठी में...जाना भी है तो कल चला जा...एक घंटे में लौट आना...तुम्हें पता होना चाहिए कि लोग दिवाली वाले दिन अपनी कोठी दिवाली देने आएंगे और उन्हें चाय पानी तुम पिलाओगे या कोई और पिलाएगा?”

हां...! अब बात पूरी तरह मेरे दिमाग के खाने में बैठ गई थी। जज साहब के दज़्तरी अमले के अलावा वकीलों, जूनियर जजों, पुलिस वालों तथा अन्य अफसरों ने साहब को दिवाली देने के लिए कोठी आना था।

दिवाली का दिन हो या नए साल का पहला दिन, इन दिनों में हमारे पूरे भारत में तोहफे लेने-देने का रिवाज़ बहुत बढ़ चुका है। इन दिनों का अफसर व अन्य बड़े तबके के लोग बड़ी बेसब्री से इंतज़ार करते देखे जा सकते हैं। सुबह-सुबह ही बाहर की ओर झांक-झांककर इंतज़ार करने लगते हैं कि कौन-कौन आता है और ज़्या-ज़्या लाता है...‘कुज़े झाक’ और कयास लगते हैं...फलां का बड़ा काम करवाया

था...वो तो बहुत बड़ा तोहफा देगा! सच्ची बात है...इन दिनों बड़े लोगों के घर तोहफों से भर जाते हैं। इन बड़ों को दिवाली या नए साल के तोहफे देने वाले छोटे लोग भी कौन-से किसी से कम हैं? यह आगे अपने से छोटों को चूसते हैं...उससे छोटे अगले वालों को नहीं बखशते...! यह एक कड़ी बन चुकी है...जो कभी टूटने वाली नहीं लगती... बल्कि अपनी जगह दिन-ब-दिन और ताकतवर और पक्की होती जा रही है। एक-दूसरे को खूब लूटा जाता है कि लाओ भाई लाओ...दो-दो...मैं जी आगे जाकर चढ़ावा चढ़ाऊं। यह मोटे माल का लेन-देन बहुत गहरा धंस चुका है...अफसरशाहों, राजनीतिकों और उद्योगपतियों में।

आज दिवाली वाली शाम थी। खूब रौनक थी। जगमगाहट थी। साहब के रीडर ने एक बिजली मैकेनिक को कोठी भेजा। वह कुछ बल्ब और तारें लगाकर चला गया। मुझे लगने लगा कि आज हमारी कोठी में भी सचमुच दिवाली है, नहीं तो आमतौर पर यह बड़ी लाल कोठी शोक और चुप में घिरी रहती थी। आज दोपहर को दीये बेचने आई औरत से मैंने ग्यारह दीये ले लिए थे और पैसे अपनी जेब से दे दिए थे। दीये बेचने आई औरत पूछने लगी, “अरे बज्रियां कैसे बनाओगे?”

मैंने बताया, “साहब के तकिए से रुई निकालूंगा और बज्रियां बना लूंगा...गांव कपास चुगने थोड़े ही जाऊंगा?”

औरत बोली, “ला-ला पांच रुपए और दे...तुज्हे बंटी-बंटाई बज्रियां देती हूं?” वह बज्रियों का लिफाफा भी लिए फिरती थी। वह अच्छी तरह जानती थी कि बड़े साहबों की कोठियों में बज्रियां बनाने का झंझट कौन करेगा? इतना समय ही किसके पास है? सो वह दीयों के साथ-साथ बज्रियां भी बेच रही थी। मैंने पांच रुपए देकर बज्रियां दीयों वाले लिफाफे में डालीं और बेफिक्र हो गया था। मैं हैरान था कि साहब ने मुझे बिल्कुल नहीं कहा था कि जा बच्चे बाजार से कोई चीज़ ले

आ...। लोग तो बाजारों से लिफाफे भर-भरकर सामान ला रहे थे और इधर यह बड़ी कोठियां छोटे घरों के मुंह की ओर देख रही थीं। अपने गांव जाने का इरादा तो मैंने उसी दिन टाल दिया था जब साहब ने कहा था कि तू नहीं जा सकता गांव। सो, मैं समझ गया था कि साहब को बाजार से कुछ मंगवाने की ज़्या ज़रूरत है...जब बाहर से मुज्त ही सबकुछ आ जाएगा। शाम हो रही थी। साहब के दोनों गनमैन अपने पुलिस विभाग में दिवाली बांटते-बांटते अब अपने इस असली साहब को भी दिवाली देने आ पहुंचे थे। वे अपनी निजी कार पर आए थे। कार के पिछले हिस्से में उन्होंने मिठाई के डिब्बे और दारू की बोतलें रखी हुई थीं...जाहिर था कि वे थानेदार से लेकर एस.एच.ओ., डी.एस.पी. और एस.एस.पी. दफतर के बाबुओं को, जो उनकी नियुक्तियां करते और हटाते थे, दिवाली देकर आए थे।

दो डिब्बे उठाए वे कोठी के अंदर आए। मैंने साहब के कमरे में बैठे साहब को जाकर बताया। साहब बाहर आ गया। उन दोनों ने एक साथ कहा, “दिवाली मुबारक सर...।”

साहब ने आगे से नहीं कहा कि आपको भी मुबारक हो। साहब ने एकदम यही पूछा, “तुम अपनी कार में आए हो...?”

“हां जी सर...।” वे फिर इकट्ठे ही बोले।

“चलो फिर मेरे साथ ज़रा...सैशन हाऊस जा आएं...दिवाली दे आएं...।”

साहब कमरे के अंदर आया। गनमैनों द्वारा दिए गए दोनों डिब्बे मेरे हाथों में पकड़े हुए थे। अंदर आकर साहब ने कहा, “ओए...यही दोनों डिब्बे एक बड़े लिफाफे में डाल दे...पता नहीं यह ज़्या लाए हों...मैं सैशन जज साहब को दे आता हूं...और वो सुबह स्टैनो फ्रूट की टोकरी लाया था...उसमें से कुछ फ्रूट निकाल ला...लिफाफे में डाल ले और पेटी से एक बोतल भी उठा ले...दो लिफाफों में डाल लो सारा कुछ...।”

मैंने साहब के हुजूमों की तामील तरते हुए दोनों लिफाफे भर लिए थे। साहब ने एक गनमैन से कहा, “बेटे तुम यहीं रुको...हम अभी आए...पीछे से अगर कोई आया तो उसे बिठा लेना...।”

साहब पीछे बैठ गया और मैंने दोनों लिफाफे बड़े आदर से गोदी में रख लिए और आगे बैठ गया। पांच मिनट में गनमैन हमें सैशन हाऊस ले आया। हाऊस के बाहर काफी सारी महंगी और तरह-तरह की गाड़ियों की भीड़ थी। ज़िले के सब छोटे-मोटे अफसर सैशन जज साहब को दिवाली देने के लिए आए हुए थे। ज़िले के एस.एस.पी. की गाड़ी और काफिला भी बाहर खड़ा था। मैं लिफाफे उठाकर अपने साहब के आगे-आगे चलने लगा...तो साहब घूरकर बोला, “आग लगी हैं तुम्हें... ? उल्लू...मेरे पीछे-पीछे चलो तुम।”

डांट खाकर मैं साहब के पीछे-पीछे चलने लगा। सैशन जज साहब व अन्य अफसर बरामदे में ही बैठे हुए थे। सैशन जज साहब ने हमारे साहब से बैठ-बैठै ही हाथ मिलाया...(ज्योंकि हमारा साहब एडीशनल सैशन जज था) बाकी के सब अफसर और ए.एस.पी. ने हमारे साहब के साथ उठकर हाथ मिलाया और अन्य अफसर भी सज़मान में सीटों से उठ गए थे। हमारा साहब नज़दीक पड़ी खाली कुर्सी पर बैठ गया था। एक तरफ़ रखे मेज पर लिफाफे रखकर मैं पीछे लौट आया। अभी पांच-सात मिनट ही बीते थे कि हमारा साहब भी ढीला-सा मुंह लेकर आ गया और हम कोठी आ पहुंचे। हमारी कोठी के आगे दो कारें खड़ी थीं। साहब बोला, “भई लगता है...जैसे अपनी कोठी भी कोई आया है।” मैंने देखा कि साहब के चेहरे पर रौनक आ गई थी।

डी.एस.पी. और एस.डी.एम. आए बैठे थे। मैं दोनों के लिए जूस के गिलास भर लाया। उनकी तरफ से लाए गए तोहफे उनके गनमैनों ने पहले ही उतारकर एक नुज़्कर में रख दिए थे। पांच-सात मिनट की सरसरी गपशप के बाद वे उठे...उन्होंने कौन-सा अभी एक जगह

दिवाली देनी थी ? जगह-जगह जाना बाकी था उनका !

मैं ‘दिवाली तमाशा’ देख-देखकर हैरान था कि वाह ओ मेरे भारत...तुम्हारा ज़्या बनेगा... ?

डी.एस.पी. और एस.डी.एम. के चले जाने के बाद तो कुछ देर बाद ही हमारी कोठी में दिवाली देने के लिए आने वालों की संख्या बढ़ गई। सैशन कोर्ट का सुपरिंटेंडेंट, नाजर, स्टोर इंचार्ज, कई थानों के एस.एच.ओ., अहलमद और रीडर दिवाली देकर खड़े-जड़े मिनटों में ही लौट गए थे। साहब से जूनियर जज भी अब आने लगे थे। अगर कोई कुर्सी पर बैठता था तो जैसे कुर्सी पर बैठने की रस्म ही अदा करता और दिवाली मुबारक कहकर तोहफा पकड़ाकर भागने की करता। सबके पास वज़्त की कमी थी। साहब का कमरा तोहफों से भर गया था। सारे शहर में पटाखे चलने लगे थे। आसपास के अफसरों की कोठियों में ख़ूब रौनक थी। साहब ने कहा, “जा ओए तूंबी मास्टर जा...मार्केट से आधा किलो मीट ले आ...नहीं-नहीं ओए आधा किलो रहने दे...आधा पाव ही लाना...मुझ अकेले से इतना कहां खाया जाएगा...।”

मैंने साइकिल निकाला और मीट मार्केट आया। यहां मीट लेने वालों की लंबी कतारें थीं। मुझे यहां बहुत वज़्त लगना था। मैं आगे होकर मीट तुलवाने की कोशिश करने लगा तो एक झटकई ने मुझे पहचान लिया, “दिवाली मुबारक भाई साब...आ जाओ-आ जाओ कितना दूं जी...पहले आपको भेजूं ?”

“आधा पाव डाल दो जी...।” मेरे इतना कहते ही झटकई ने आधा किलो मीट लिफाफे में डालकर मेरे हाथ में पकड़ा दिया। मैं पैसे देने लगा तो उसने कहा, “ना जी...ना जी महारल ...इतना भार ना चढ़ाओ...रखो जेब में पैसे... आज दिवाली है...हमारी ओर से यही दिवाली कबूल करना जी...।”

अब मैंने झटकई को अच्छी तरह पहचान लिया था...यह तो

हमारे कोर्ट में आता रहा था, इसका अपनी बीवी से तलाक का केस हमारे साहब के पास लगा हुआ था। जब मैंने मीट वाला लिफाफा साइकिल पर टांगकर पैडल पर पैर रखा तो झटकई की आवाज़ आई, “भाई साहब...ज़रा आवाज़ जल्दी मार दिया करो...आकर मैंने मीट भी बेचना होता है...।” साइकिल भगाता हुआ मैं सारे रास्ते हंसता आया...जब कोठी पहुंचा तो हंसी गायब हो गई।

लाकर कूकर में मीट बनाने लगा तो नज़दीक घूम रहा साहब कहने लगा, “ओए तुझे कहा था आधा पाव लाना...आधा किलो किसलिए ले आया...इतना मैं अकेला कैसे खाऊंगा... ?”

मैं दिलेर हो गया था, “सर...इस पर कौन-से पाऊंड लगे हैं...मुज्त दे दिया है झटकई ने...वही झटकई है जो अपने कोर्ट में पेशी पर आता है...भगतू मल बनाम कांता देवी केस वाला...यह लीजिए सौ रुपया वापस...बचा हुआ मीट मैं खाऊंगा सर...पहले आप खा लीजिएगा...अब मैं सर दिवाली कहां जाकर मनाऊं? मेरा भी दिल करता है दिवाली मनाने को सर...।”

सौ रुपया जेब में डालकर साहब प्रसन्न हो गया था।

“ओ खा लेना बेटा...खा लेना...।” कहता हुआ साहब कमरे में जा रहा था। मैंने फ्रिज से खारा सोढा और पानी की बोतल निकाली और साहब के कमरे में रखने चला गया। पटाखों का शोर और ऊंचा हो रहा था। साहब ने दो मोटे-मोटे पैग बनाकर अंदर फेंके और फिर नहाने के लिए गुसलखाने में घुस गया। साहब अज़सर नहाते समय ज्यादा वज़्त लगा देता था। मैंने रसोई से स्टील का गिलास उठाया ...ज़्योंकि आज बड़े लोगों की ओर देखकर मेरा मन भी पैग लगाने को हो आया था। मैंने साहब की बोलत से अपने पीने के लिए शराब स्टील के गिलास में उलट ली और बाकी बोतल में उतना ही खारा सोढा मिला दिया कि कहीं साहब मेरी चोरी ही ना पकड़ ले! आज चोरी की दारू पीकर मुझे बड़ा मज़ा आया था। रोटी खाने के बाद साहब बोला,

“ओए ये देख...खोल-खोलकर...ज़्या है इनमें ?”

साहब और मैं तोहफों वाले डिब्बे खोलने लगे। जब कोई कीमती और महंगी शै डिब्बे से निकलती तो साहब खुश हो जाता। शराब की महंगी बोतलें बढ़िया पेपरों में पैक की हुई, कई अफसरों ने भेंट की थीं। एक डिब्बे से कोट-पैंट सिलवाने के लिए महंगा कपड़ा निकला तो साहब कपड़े को ध्यान से देखने लगा...जैसे अभी दर्ज़ी को हुज़्म देना हो कि मेरा कफन सिल दो भाई...। किसी डिब्बे में महंगी क्रॉकरी थी।

ड्राईफ्रूटों के डिब्बे भी थे। ख़ैर! साहब ने मिठाई का एक डिब्बा खोला...उसमें आगरे का पेठा था...साहब ने पेठे का पीस उठाया नाक से लगाया, “ओए, ऐसा लग रहा है जैसे यह पेठा बासी है...।” मैंने साहब से वही पेठा पकड़कर सूंघा, “नहीं जी...नहीं सर...ठीक है जी...और राइट है...।”

“लो हद हो गई...साला बेवकूफ...आज अंग्रेज़ी बोल रहा है तोते की तरह...मेरा नाक कैसे झूठा हो गया...और तेरा नाक सच्चा... ? जब मैंने कह दिया कि पेठा बासी है...मुझे लगता है यह डिब्बा वही साला चगल-सा थानेदार देकर गया है, काला-सा...कोई बात नहीं अब आने दे इसे पेशी पर...सारा दिन खड़ा रखूंगा साले को...शाम को भेजा करूंगा...फिर पता चलेगा साले को कि कैसे तोहफा देते हैं जज साहब को...।

“सर छोड़ो जी...थानेदार ने पेठा कौन-सा घर में बनाया है...चलो कोई ना जी...।”

“तुज़्हारा मामा लगता है थानेदार...उसकी वकालत कर रहा है बेवकूफ...।”

मैं चुप कर गया। साहब अभी भी पेठे वाले डिब्बे की ओर घूर-घूरकर देख रहा था। साहब बोला, “ओए...यह पेठा तुम ले जाना गांव अपने...इसे धूप लगवा लेना...फिर ठीक हो जाएगा...अगर इसमें कीड़े

हुए तो वो भी धूप से मर जाएंगे...।”

“सर...मैं ज्यों गला-सड़ा पेठा अपने गांव लेकर जाऊं...अगर धूप लगवाकर खाया जा सकता है तो कल धूप लगवा दूंगा...आप खा लेना...नहीं तो कुजों को डाल दूंगा...।”

“चुप कर साला...आज कैसे दिलेर हुआ फिरता है दिवाली वाले दिन...।” मेरे सिर पर खड़ा साहब भड़का। मैं अगले तोहफे वाला डिब्बा खोलने लगा था।

मेरी चोरी पकड़ी गई

साहब अपने बैडरूम में बैठा किसी अहम केस की फाइल देख रहा था। कोठी के बाहर शोर होने लगा। मैं भागा-भागा गया...पता नहीं कौन थे...ऊंची-ऊंची झगड़ रहे थे। फिर मैं भागा-भागा साहब के पास अंदर आया, “सर जी, वहां पता नहीं कौन हैं, झगड़ रहे हैं, बहुत लोग इकट्ठे हुए हैं।”

“फिटे मुंह तेरा...साला पागल...कोई हो ना हो...लड़े मरे...तुम मेरा सिर ज्यों चाट रहे हो...भौंका।’

साहब खफा हो गया और मैं बाहर भाग आया।

शाम के समय जब साहब मूड बना रहा था तो मैं अपनी मौज में आया? तूंबी उठाकर गाने लगा:

बोलण नालों चुप्प चंगेरी
चुप दे नालों परदा
जे मनसूर ना बोलदा
सूली काहनू चड़दा...’

साहब को कोई बात सूझी और वह मेरे गाते-गाते बीच में ही बोला, “बात सुन ओए...तू आया बड़ा गवइया...तुम खुद तो एक मिनट भी भौंकना बंद नहीं करते तो मनसूर भला कैसे चुप कर जाता...तुम यह गीत गा रहे हो कि बोलने से चुप अच्छी...तुम ऐसे गाओ कि भौंकने से चुप अच्छी...निंदर भौंकने से ना हटता तो सूली पर ना चढ़ता...ह...ह...ह...।”

“लो सर जी...आप तो यूं ही कह रहे हो...मैं कब भौंकता हूं...कभी देखा मुझे भौंकते हुए?”

“और ज्या ...आज सुबह ही भौंक रहे थे...जब मैं कल्ल केस की फाइल पढ़ रहा था...जी बाहर कोई झगड़ रहा है...कोई लड़े, कोई मरे...मैंने छुड़ाने थे जाकर भौंके...।”

“सर जी पहले आपने मेरा नाम मरासी रखा था...अब भौंका ना रख दीजिएगा।”

“ओए नहीं मरासी...नहीं डालता तुम्हारा नाम भौंका...वैसे हो तो तुम भौंके ही...।”

साहब को जैसे मैं खुद ही ‘मरासी’ याद दिला बैठा था। फिर साहब ने नया ही शोशा छोड़ा, “तुम मरासी भले ही असली नहीं, पर गाने वाले तो हो...यह सारे गाने वाले मरासी ही होते हैं...”

“नहीं जी नहीं...सर जी...सारे मरासी कब होते हैं...गरेवाल हरचरण मरासी था? यह गुरदास मान और हरभजन मान मरासी हैं? यह मान जट्ट हैं...और भी बड़े जट्ट गाते हैं...अब तो हरेक जट्ट ही गाने वाला बना फिरता है...कोई सिद्धू है कोई बराड़...कोई भुल्लर...कोई संधू...कोई गिल...कोई चहल...काई औलख और कोई ढिल्लों है...सारे जट्ट ही गाने लगे हैं...जैसे और कोई काम ही ना बचा हो जट्टों के पास...खेतीबाड़ी फेल हो गई है।”

“ओए बात सुन...मेरा सिर ना खा...कोई चुटकुला सुना...मरासियों को चुटकुले बहुत आते हैं...गाने वालों को।”

मुझे एक चुटकुला याद आया...जो गाने वालों पर ही था! मैं सुनाने लगा, “सर जी...एक लड़का था...वह सुबह- सुबह उठकर गाना गाता था छत पर चढ़कर...बेसुरे अलाप लगाता। जब वह गाना शुरू किया करे तो उसके साथ ही पड़ोसियों का कुज़ा रोने लगे...जब कुज़ा रोना शुरू करता तो लड़का गाता-गाता डिस्टर्ब हो जाया करे। सर जी...एक दिन लड़का बहुत ही दुखी हो गया और अपने बापू से कहने लगा, बापू जी मैं दुखी हूँ...जब मैं गाता हूँ...कुज़ा रोता है...पड़ोसियों को कहिए जाकर कि कुज़ा चुप कराया करें...और सर जी...जब

लड़के का बापू उलाहना देने गया...कहने लगा भाई हमारा लड़का जब गाता है तो आपका कुज़ा रोता है...चुप कराया करो भाई और सर जी...पड़ोसन कहने लगी, भाई जी हम कुज़े को कैसे रोके...पहल तो आपका लड़का ही करता है...पहले रोने लगता है...कुज़ा तो बाद में ही रोता है...और सर जी...लड़के का बापू नमोशी का मारा घर आ गया...लड़के को जब बात बताई तो उसे बड़ी शर्म आई...वह लड़का घर से निकल गया और कुछ महीनों बाद पंजाब का महाबेसुरा पॉप सिंगर बनकर मशहूर हो गया।”

साहब खूब हंसा था चुटकुला सुनकर। मैं भी हंसता-हंसता अपना काम करने लगा।

किशन छुट्टी काटकर आया था। कई दिन साहब उसके साथ ढंग से ना बोला, फिर खुद ही ठीक-ठाक हो गया। किशन कोठी काम करता और मैं कचहरी में आवाजें मारता था। वैसे मैं कोठी में किशन के साथ काम में हाथ बंटता था। मुझे कचहरी का काम आसान लगता था...कुछ पहचान वाले भी मिल जाते थे।

जज साहब के कचहरी आने से घंटा पहले मैं केसों की फाइलों वाला अटैची अपनी साइकिल पर लादकर कचहरी आ जाता था। साहब के बैठने वाला ऊंचा चैंबर, अदालत में पड़ी कुर्सियां, मेज, सफाई-सेवक आकर पहले ही साफ कर जाता था। मैं आकर नलके से वाटर कूलर भर लाता या कपड़ा मारकर मिट्टी झाड़ देता। रिटायरिंग रूम में साहब के मेज पर कांच के बड़े गिलास में पानी भरकर रखता, ज्योंकि साहब कार से उतरते ही पहले सीधा रिटायरिंग रूम में ही आकर बैठता था। वहां कुछ देर बैठने के बाद केसों की सुनवाई के लिए ऊंचे चैंबर पर चढ़ जाता। वहां भी पानी का गिलास अलग रखा होता। एक दिन स्टैनो से फाइल की नुज़्कर लगने से गिलास टेढ़ा हो गया। साहब मुझपर खफा होने लगा, “तुम गिलास रखते ही ऐसी

जगह पर हो...इस ओर रख दिया कर...मेज सारा गीला हो गया...। अज्जल के अंधे हो तुम...।”

मैंने पूछा, “और लाऊं पानी?”

“आग बुझानी है? सारा दिन पानी-पानी करता रहता है....यह मेज गीला कर दिया अब...।”

साहब टूटकर पीछे पड़ गया था। साथ खड़े वकील भी हैरान थे कि गिरा तो पानी ही है और जज साहब कितने खफा हुए बैठे हैं। कई बार जज साहब वकीलों और मुंशियों पर भी गर्म हो जाया करते थे, अगर कोई वकील लेट पेश होता तो आकर ‘सॉरी सर’ कहता। जज साहब खीझे होते। ज्यादातर वकील तो आवाज़ पड़ते ही आ हाज़िर होते। छोटी अदालतों (लोअर कोर्ट) में पेश होते समय वकील काला कोट कम ही पहनकर जाते, मगर हमारे साहब की अदालत में सब काला कोट पहनकर और टाई लगाकर ही पेश होते थे। ज्यादातर नए मुंशी तो साहब से डरते पीछे ही खड़े रहते। मैं रीडर से तारीख पूछकर कईयों को फारिग कर देता था, ज्योंकि मैं खुद मुंशी रह चुका था और मुंशियों की समस्याओं का मुझे अच्छी तरह पता था।

एक दिन मैं स्वाभाविक ही पूछ बैठा, “सर...बीबी जी तो कभी आए नहीं...कब आएंगे बीबी जी?”

“तुमने बीबी से दही लेना है...कुजे की पूंछ हो तुम बारह सालों के बाद भी टेढ़ी की टेढ़ी...भौंकने से हट जाया कर किसी समय तो...अपने काम से मतलब रखा कर...सुना या नहीं? लगता है तुम्हारे कानों में कीड़े पड़ गए हैं...पशुओं वाले तेल से मरेंगे...।”

साहब की गालियों या झिड़कियों का मुझे अब गुस्सा आना हट गया था। साहब को छेड़कर मुझे बड़ा स्वाद आता। एक दिन साहब ने पानी मांगा तो मैं वैसे ही गिलास भरकर...हाथों में पकड़कर ले गया था। साहब ने कहा, “बात सुन ओए, ट्रे कहां है? आगे से इस तरह पानी या कोई और चीज़ पकड़ाई तो मैं तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा...जो

चीज़ भी मांगूं...बाइज्जत ट्रे में रखकर लाना...कोई मेहमान चीज़ मांगे, तो भी...सुन लिया?”

“अच्छा जी सर, आगे से ध्यान रखूंगा।”

दूसरे दिन ही सुबह कोई उनका दोस्त जज साहब को मिलने आ गया। ड्राइंग रूम में बैठे थे। घंटी बजी, मैं अंदर गया, “ओ बेटे बात सुन...बाहर मेरी कार में ड्राइवर से मेरी ऐनक ला।”

मैं ऐनक पकड़कर आता हुआ सोच रहा था कि अगर इसे हाथ में लेकर जाऊंगा तो अच्छा नहीं लगेगा...साहब गुस्से होगा...सो मैं रसोई में आया, ऐनक ट्रे में रखी और जा हाज़िर की। आए हुए दोस्त साहब तो हैरान थे ही। हमारा साहब बुरी तरह खीझ गया, “दुर फिटे मुंह...अज्जल मारी गई है तुम्हारी, यह ज़्या ओए...?”

“सर जी, आपने ही कल कहा था कि जो भी चीज़ लानी है ट्रे में रखकर देनी है...।”

“चुप कर साला...भौंकता है, अगर मैं चप्पल या बूट मांगूं तो वो भी ट्रे में रखकर दोगे? भाग जा यहां से बेवकूफ...।”

मैं रसोई में आकर बड़ा हंसा था।

एक दिन कचहरी में मुझे पंजाबी सांस्कृतिक मेलों के बाबा बोहड़ प्रो. जगदेव सिंह जसोवाल ने ढूंढ लिया। उन्होंने मेरी उस्ताद यमला जट्ट के बारे में लिखी किताब पढ़ी हुई थी और नौकरी लगने से पहले मैं उन्हें मिला भी था। कहने लगे, “तेरे उस्ताद यमला जट्ट की याद में एक भारी सांस्कृतिक मेला लग रहा है...वहां तुम्हारा पहचान बड़ा जरूरी है...तुम उस्ताद यमला जी के चेले हो...उनके बारे में किताब भी लिखी है...और भी कई कुछ लिखा है, मेले पर तुम्हारा पूरा-पूरा मान-सज्मान करेंगे...तुम वहां अपने उस्ताद जी के कोई चार-पांच गीत गा देना ताकि उनकी याद भी लोगों में ताज़ा हो सके।”

जसोवाल अपनी गाड़ी कचहरियों में ही ले आया था। मैं डर रहा

था कि अंदर से साहब ही ना घंटी बजा दे...।

जसोवाल फिर बोला, “कैसे मुंह फुलाया है...तुम यहां आवाजें मारते फिरते हो लोगों को...पंजाब के लोग तुम्हें आवाजें मारते फिरते हैं...सारी उम्र यहीं खड़े मर जाओगे...हुआ ज़्या है तुम्हें... ? अभी उम्र ही ज़्या है तुम्हारी...अच्छा, मैं जा रहा हूँ अब...तुम जज सहब से किसी ना किसी तरह छुट्टी लेकर मेले पर आना।”

मैंने भरे मन से कहा, “बापू जी...चाय लाऊँ ?”

हालांकि मुझे पता था कि मैं बापू जसोवाल को चाय नहीं पिला सकता था। बापू ने कहा, “नहीं, मैं नहीं पिऊंगा चाय।”

जसोवाल भरे मन से कार में बैठकर चला गया।

मेरे उस्ताद जी के नाम पर इतना बड़ा और अच्छा मेला किया जा रहा था और मैं जवाब भला कैसे दे सकता था ? मेले में अभी दस दिन बाकी थे, मैंने उनसे पक्का वादा किया था कि मैं हर हाल में मेले में पहुंचुंगा।

पहले मैं चाहता था कि साहब को सच-सच बताकर छुट्टी ले लूं, जैसे रेडियो प्रोग्राम के लिए ली थी। फिर मेरे मन में आया कि अगर साहब ने जाने से मना कर दिया फिर ? ऐसे भी कह सकता है कि तुम अब इस काम पर ही हो गए हो। इसलिए अगर साहब को ना ही बताया जाए तो ठीक रहेगा। मेले में जाने के लिए मैं कई तरह की तरकीबें गढ़ रहा था।

साहब की कोठी के सामने बनी हुई सरकारी कॉलोनी के ज्वार्टरों में मेरा एक दोस्त था, उसे भी और उसके बापू को साहित्य पढ़ने का शौक था। मेरी वे बाप-बेटा बहुत कद्र करते थे। अच्छा मेल-मिलाप था उनके साथ मेरा। मेले जाने के बारे में जब मैंने उसे बताया तो वह बोला, “मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।”

मैंने कहा, “जाएंगे कैसे ? कोई स्कीम तो बना, तरीका ढूंढो कोई।”

दोस्त ने तुरंत तरीका ढूंढा, कहने लगा, “तुम ऐसा करो, जज साहब का फोन नंबर दो मुझे...मैं फोन करूंगा...कहूंगा.. जी मैं निंदर का भाई बोल रहा हूँ। गांव में किसी से झगड़ा हो गया है...निंदर को छुट्टी देकर जल्दी भेज दीजिए।.. तुम भाग आना, साहब छुट्टी जरूर दे देगा...देखते जाओ तुम...यह काम पक्का बन जाएगा और हम इकट्ठे मेले जाएंगे।”

दोस्त की बात मुझे जंच गई। और ऐसे हमने प्रोग्राम बना लिया था, साहब की कोठी का फोन मैंने उसे लिखा दिया था। तूबी वाला झोला मैंने दोस्त को पहले ही पकड़ा दिया हुआ था और सीधे हमने मेले के लिए निकल जाना था। मेले से एक दिन पहले दोस्त ने शाम को फोन करना था। मैं फोन का इंतज़ार करता हुआ आसपास ही घूम रहा था। मन में यह भी डर था कि हमारी यह स्कीम फेल ही ना हो जाए, फिर ज़्या बनेगा ?

फोन बजा, साहब ने उठाय, “हैलो, कौन बोल रहा है, अच्छा, हां है... ये लो तुम्हारा फोन है गांव से।”

मैंने फोन कान से लगाया और नाटक-सा करने लगा, “हैं...अच्छा किसके साथ ? अच्छा...चोटें कितनी लगी हैं ? अच्छा... ? हैं... ? सिर फाड़ दिया... ? ओ तेरी... ? वो तो ठीक है... ? चोटें ज़्यादा तो नहीं लगीं... ? ज़्यादा हैं ? अच्छा फिर मैं साहब से छुट्टी लेकर आता हूँ..।”

नाटक करता हुआ मैं फोन रखकर हाथ मलने लगा।

“अब जाओगे तुम...कल जल्दी आ जाना...चला जा...वैसे तो किशन है...चोटें काफी लगी हैं ? गांव में तुम्हारे गलियों-नालियों के पीछे सिर फाड़ते रहते हैं लोग एक-दूसरे के...।” साहब ने कहा।

मैं जल्दी-जल्दी दोस्त के घर आया। हम हंस रहे थे कि बड़ा दाव लगा है। कोठियों में से होते हुए हम चोरों की तरह छिपते-छिपाते बस अड्डे पर आ गए।

मेले वालों ने गर्मजोशी से स्वागत किया। जसोवाल जी मुझे आए देख बड़े खुश हुए। हमारे रहने और खाने-पीने का अच्छा प्रबंध था। सुबह मेले वाली जगह पर बहुत जमघट था। एक मंत्री जी भी तशरीफ लाए हुए थे। मैंने तूंबी टुनकाई...उस्ताद यमला जी के कई गीत गाए...लोगों ने बड़े पसंद किए... खूब तालियां बजाईं। मुझे बड़ा हौसला मिला। कुछ पैसे ईनाम के तौर पर मिले। मंत्री जी ने सज्मान किया, गले में हाल डाले गए...लोई और सज्मान पत्र, मोमेंटो भी भेंट हुआ। फोटो खींचे गए। समय पर ही काम खत्म हो गया था। बस में बैठे और अपने ठिकाने आ पहुंचे। अपना सारा सामान मैंने दोस्त के घर ही रख दिया था। कोठी आकर साहब को सत श्री अकाल कही।

“कैसे हैं अब ? निपट गया लड़ाई-झगड़ा...चोटें वगैरह ठीक हैं ?”

“हां जी सर, पड़ोसी झगड़ पड़े...हमारे आदमियों को पीट गए...अब तो देखो...जी कुछ बनता है कि नहीं.. ?”

लगा कि बात आई-गई सी हो गई है। मैं खुशी के मारे सारे काम करता फिर रहा था। मेले की रौनक का आनंद अभी भी मेरे मन में तरोताजा था। दूसरे दिन सुबह रोज़ की तरह साहब के पास अखबारें आईं। एक अखबार अंग्रेज़ी का आता था और दूसरा पंजाबी का। पंजाबी अखबार में मेले की विस्तार से रिपोर्ट छपी हुई थी और साथ फोटो भी छपी हुई थी। मेरी फोटो भी मंत्री जी और जसोवाल के साथ खड़े की.. पूरे कैप्शन के साथ साफ-साफ दिखाई दे रही थी। साहब ने मुझे ज़ोर से आवाज़ लगाई, “ओए इधर आ, यह ज़्यादा है ? यहां कब चला गया तू ? हैं ओए ? ओए कुजेया...यह...तो कल ही हुआ है...तुम कैसे यहां... ? तुम तो गांव गए थे झगड़ा निपटाने...यमले जट्ट का मेला और तुज्हारा गांव, यह ज़्यादा कहानी हुई... ?”

साहब कभी मेरी ओर देखता और कभी अखबार में छपी रिपोर्ट की ओर।

“तू गांव का बहाना लगाकर...मेले चला गया था.. जिस कुएं का तुमने पानी पिया है वहां ईंटें मैंने ही लगाई हैं...मुझे मूर्ख बनाते हो तुम.. ? तुम इतने झूठे और फरेबी हो... ? मेले में गया ज्यों तू ? इतना झूठ बोला.. ? बड़ा गंदा है तू तो.. हद हो गई यार...कल का छोकरा...मुझे मूर्ख बनाता है... ?”

“सर जी माफ कर दो, माफ कर दो...आगे से नहीं झूठ बोलता मैं...इस बार माफ कर दो...।”

“तुज्हारे जैसे साले...तुम समझते ज़्यादा हो अपने आप को ओए ? मैंने तुज्हे सीधा ना किया तो मुझे भी सेशन जज ना कहना...देखो तो सही कैसे खड़ा है गिरगिट की तरह अकड़कर...मंत्रियों के साथ...गले में हार डाले हैं... शज़ल तुज्हारी है हारों वाली...तुज्हारे गले में मैंने टूटे छिज़रों का हार न डाला...फिर कहना...आ गया बड़ा गवइया तू...तोड़ूं तुज्हारी टांगें। कल करूंगा सेशन जज से बात...तुज्हारा काम तमाम करूंगा...घर भगाऊं तुज्हे...मुझे अंधा बना रहे हो।”

“सर जी, माफ कर दो जी...आगे से नहीं झूठ बोलता जी...इस बार माफ कर दो।”

मैं माफियां मांग रहा था, साहब ऊंची-ऊंची बेरोक बोले जा रहा था। साहब बहुत गुस्से में था। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था.. ज्योंकि साहब ने मेरी चोरी पकड़ ली थी।

गाने लगा साहब

साहब ठेठ मलवई था। मालवे की पैदाइश.. शिक्षा भी मालवे में...देहाती जट्ट था, वैसे भी स्पष्ट, भाषा भी सरल...पर ठाठ भी पूरा जैसा पहले जिक्र किया है...नौकरी भी लंबे समय से मालवा में ही कर रहा था। अपने गांव भले ही कम जाता था...ज़्यादा अपनी मौज में ही रहकर खुश था। जब कभी साहब मोहाली जाता और वापस लौटता तो तनाव से भरा हुआ ही लौटता, जैसे कलेश करने ही जाता था.. कई बार मैंने अपने साथ वाले अर्दलियों से कहा था कि मैंने साहब का नाम कलेशी रख दिया है। सुबह जब साहब की कार कोर्ट के बाहर आकर खड़ी होती तो दूसरे अर्दली देखकर कहते, “लो जी, आ गया कलेशी..”

‘तूतक तूतक तूतीयां, हई जमा लो...’ यह गीत बहुत मशहूर हुआ था... जिस गली-मोहल्ले में घुसो, यही बजता सुनाई देता था। जज साहब के कानों में भी यह कहीं से पड़ गया था। एक दिन साहब कहने लगा, “मेरी बात सुन ओए तूंबी मास्टर...तुम यूं ही टुंग-लुंग-लुंग सी उठाए फिरते हो...तुम भी ऐसा गाना शुरू करो...तूतक तूतक तूतीयां...छोड़ो तूंबी का पीछा...यमला मर गया...तूंबी भी मर गई...यूं ही कद्दू में डंडा फंसाए फिरता है, अगर गाना है तो ऐसा गा जैसे मलकीत गाता है...तूतक तूतक तूतीयां...नीं आ जा तूतां वाले खूह ते...।”

साहब की यह बातें बेतुकी थीं। कोई अर्थ नहीं था इन बातों का। मैं साहब को अनेक बार बता भी चुका हूं कि मैं यमले जट्ट का चेला-श्रद्धालु हूं...गाना मेरा धंधा नहीं शौक है...तूंबी मेरे गुरु की निशानी है...साहब का इन बातों से कोई वास्ता नहीं था। जो उसके मन

में आता, वह सुना देता था। पंजाबी गायकी, साहित्य और कला के बारे में या संगीत-कल्चर के बारे में भी उसे बिल्कुल जानकारी नहीं थी।

शाम हुई, साहब मूड बनाने लगा। आज पूरा खुश था। आज एक खबर आई थी जजों के वेतन में भारी वृद्धि की गई है। मैंने तो यूं ही पूछ लिया, “सर जी...आज आप मलकीत के गाने तूतक तूतक तूतीयां की बात करते थे, आपने कहां से सुन लिया यह गीत सर जी..?”

“और तुम ही अकेले गीत सुनने-सुनाने जानते हो? मैं नहीं सुन सकता? अगर मैं गाऊं भी तो तुमसे सौ गुना अच्छा गाऊंगा? तू यह ज़्या टुंग-लुंग-लुंग करता रहता है...यह तो मेरे लिए मामूली बात है।”

साहब ने व्हिस्की का पैग अंदर फेंका और भुजिया खाया।

मैं रसोई की ओर जाने लगा, “ओए जाता किधर है, इधर आ मेरे पास...जा अपनी टुंग-लुंग उठाकर ला...मैं बजाकर दिखाऊं तुज्हे...तुम तो समझते हो ना कि यह तुज्हे ही अकेले को बजानी आती है...मैं देखना इसे कैसे बजाता हूं बेटा.. तुमसे तो अच्छी ही बजाऊंगा...देखना अब।”

यह सुनकर मैं एकदम घबरा गया कि साहब तो अब तूंबी की तार ही तोड़ देगा। यह नया ही पंगा खड़ा हो गया। इसे ज़्या पता तूंबी बजाने का...ना कभी इसने पकड़ी...ना पता...ना सुर। अब नशई हुए को ज़्या कहूं...? खैर, मैं तूंबी उठा लाया था।

“ओए ला ओए ला, पकड़ा मुझे मरासी टुंग-लुंग-लुंग-लुंग।”

मैंने डरते हुए साहब की ओर तूंबी बढ़ा दी। साहब ने उलटे हाथ से उलटी तूंबी पकड़ ली। तार पर उलटी-सीधी उंगली मारने लगा। तूंबी बेचारी टुंग-लुंग करके टुनकने के बजाए ‘ढिप-ढप-ढप-ढप’ करने लगी। मैं डर रहा था कि साहब तूंबी की तार तोड़कर ही रहेगा अब। साहब तूंबी के साथ माथा मारने लगा, पर तूंबी ‘ढिप-ढप-ढप-

ढप' ही करती रही। आखिर जब बात न बनी तो साहब मेरी ओर तूंबी बढ़ाता हुआ बोला, "यह लो पकड़ो मरासी, मुझसे नहीं बजती, तू ही बजा इसे, ले पकड़ अपनी...उलटा पंगा ले बैठा मैं...।"

मैंने तूंबी पकड़ी और तार सैट की। उस्ताद यमले जट्ट के गीत, 'जगते नू छड के तू भगते नू कर लै, जिन तेरा होणा ए सहाई' की तर्ज निकालने लगा। साहब ने एक ओर पैग अंदर फेंका, सिर मारने लगा, "देख ओए, कैसे टुनकती है साली...लओ...हैं...? मेरे हाथ में आकर गूंगी-सी बनी रही...अब देख कैसे टुनकती है...मरासी ही बजा सकता है इसे।"

मैं तर्ज निकाल ही रहा था कि साहब बोला, "ओए बात सुन ओ मरासी, तू तूंबी पर तूतक तूतक तूतीयां की तर्ज निकाल...मैं गीत गाता हूँ...और तू तूंबी बजा...मेरे साथ...बजा ओए तूंबी बजा..."

मैं और हैरान था कि साहब को आज गाना कहां से उतर आया? और फर्क देखो, कहां तूंबी और कहां तूतक तूतक तूतीयां गीत...पॉप डांस...और तूंबी के साथ इसका ज़्या मेल हुआ भला?

मैंने कहा, "सर जी...यह गीत तो पश्चिमी साजों पर गाया है मलकीत ने...यह तूंबी पर नहीं गाया जा सकता...यह तो जी इलेक्ट्रॉनिक साजों पर गाया जाता है।"

"दुर फिटे मुंह तेरे...अजल के अंधे...तू मुझे समझा रहा है...बनता है बड़ा गुलाम अली खान...मैंने तुज्हें बीस बार कहा है कि मुझे मत समझाया कर...हरेक बात में खुद ही आगे होने लगता है...ज्यों नहीं गाते तूंबी पर...ला पकड़ मुझे तूंबी...मैं तुज्हें गाकर दिखाऊँ...।"

साहब ने मेरे हाथ से तूंबी पकड़ ली और ऊंची-ऊंची आवाज़ में गला फाड़-फाड़कर बोलने लगा :

ओ हई जमा लो

तूतक तूतक तूतीयां

भई तूतक तूतक तूतीयां

तूंबी कहां से बजती? वह फिर 'ढिप-ढिप-ढप-ढप' ही करती रही और साहब मुंह ऊपर उठाकर पागलों की तरह तूतक-तूतक-तूतीयां- नी आजा तूतां वाले जूह ते...ऊपरी स्वर में गाता रहा। जब साहब की बात न बनी तो उसने एक और नया पंगा खड़ा कर दिया.., कहने लगा, "ओए बात सुन.. तू मेरे पीछे हई जमा लो, हई जमा लो बोल...जैसे मलकीत के पीछे बोलते हैं...साथ में तूंबी बजाकर बोल...लै देख, मैं गाता हूँ...।"

साहब फिर गाने लगा, मुझसे जैसे कह रहा था, मैं वैसा किए जा रहा था। हैरान भी था...हंसी भी आ रही थी कि साहब को अब कौन कहे...ना साहब को गाने का पता था...बस भूत सवार हो गया था उसके सिर पर गाने का...बेसुरियां मारे जा रहा था। मैं करता भी ज़्या? जवाब कैसे देता? जब मैं 'हई जमा लो हई जमा लो' बोलता तो तूंबी लाहौर होती और मैं मुज्तसर से परे कोट भाई फिर रहा होता...साहब बेचारा बटाला के पास अमरजीत गुरदासपुरी के गांव उधोवाली की रूढ़ियों पर होता..।

कोई सुर नहीं...ना कोई मेल.. साहब बेसुध होकर "तूतक तूतक तूतीयां" बोलता गया। जब पूरी तरह उसकी सांस फूल गई, हांप गया, तो बोला, "अबे देखा मरासी, मैंने गाना गाया...तुम समझते हो कि मेरे बिना कोई गा ही नहीं सकता यहां...तुम अकेले ही गायक पैदा हुए हो? सुना मेरा गीत? ऐसे गाते हैं...हम भी गाना जानते हैं...।"

मुझे अंदर ही अंदर खूब हंसी आ रही थी। भले ही मैं सरेआम खुलकर हंस नहीं सकता था। आज भी साहब अपने आप में पूरा खुश था। उसने अच्छे से तूतक तूतक तूतीयां गीत सुना भी नहीं हुआ था और ना ही एक आधे बोल के अलावा पूरा गीत ही आता था उसे। यह तो शराब में धुत हुए को बनावटी कलाकारी चढ़ी हुई थी...जो अब सांस फूलने के कारण उतर गई लगती थी।

मुझे रसोई में आकर काम लगे को भी काफी देर हो गई थी, फिर खाने वगैरह की तैयारी करने में लग गया था। काम करते हुए मैं अपनी ही सोचों में मस्त था कि साहब तो कमाल है। इतनी पर्टे थीं इसकी...कि पलटते जाओ कोई भेद ही नहीं था कि ज़्या ज़्या तमाशे करता है...कभी कैसा हो जाता और कभी बहुत ही अलग...सोचता-सोचता मैं दाल को छोंक लगाने के लिए प्याज़ काटने लगा। साहब को पता नहीं ज़्या सूझी कि वह मेरे पीछे धीरे-धीरे आया और एकदम ऊंची-आवाज़ में गला गाड़ा, “ओ भई हई जमा लो... ओए तूतीयां तूतक...”

मेरे हाथ से चाकू तो गिरना ही था, बल्कि मैं भी गिरता-गिरता मुश्किल से बचा था और साहब ऊंची-ऊंची किलकारियां मारकर हंसने लगा, “ओए वाह ओए मरासी, तू तो डरपोक है...दुर फिटे मुंह, गिर गए थे डरकर...जा ओए...तुज्हे कुछ नहीं आता, सिवाए टुंग-लुंग-लुंग के.. मैं सिखाऊं बेटा तुज्हे गाने का ढंग...तू तूतक तूतीयां गाया कर.. यमले से तुमने ज़्या दही लेना है... ओए वो तो मर गया कब का.. अब तुम मलकीत का चेला बन जा मरासी...तू भी मर जा...तू भी मर जा मरासी...”

साहब इधर-उधर की फालतू मारे जा रहा था। मैं उसकी लीला न्यारी देखकर हैरान था।

भैंस की बछिया का बिछोह

भैंस की बछिया की मैं पूरी-पूरी सेवा करता था, फिर भी वह काफी कमज़ोर हो गई थी.. देहाती भैंस की बेटा का शहरी वातावरण में मन नहीं लगा होगा.. मैं यही सोचता था।

बछिया के पेट में कीड़े थे.. वह दिन-ब-दिन और कमज़ोर हो रही थी। चारे को मुंह लगाने से भी हट गई थी। अपनी माँ (भैंस) का दूध तो वह कब का छोड़ चुकी थी। जब बछिया भैंस का दूध पी रही होती, तब भी साहब खीझता था, “देखो ओए साली सारा दूध पी जाएगी...खींचो पीछे...हम ज़्या पिपंगे...देख कैसे पी रही है दूध...सारा पी जाएगी कंजर...हम मोहाली ज़्या भेजेंगे?”

अब साहब उलटा कहता, “ओए तुम बछिया को भूखा रखते हो, तरीके से चारा नहीं डालता इसे, तुम मार दोगे इसे...अगर बछिया मर गई तो भगा दूंगा तुज्हे, सुन ले अब..।”

मैंने कहा, “सर जी, कभी आप कहते हैं कि बछिया कमज़ोर है, किशन को दे दो...आप दूध नहीं पीने देते.. अब कह रहे हो मर रही है...मैं थोड़े मार रहा हूँ इसे?”

साहब मेरी ओर झांका पर चुप रहा।

एक दिन साहब फिर बछिया की बात ले बैठा, “बात सुन ओए.. तुमने बछिया मारनी है...चारा नहीं डालता इसे? अगर यह मर गई, तेरा हाल देखना ज़्या करता हूँ मैं..”

मेरे मुंह से भी निकल ही गया, “सर जी, चारा तो खाती नहीं यह.. इसके सामने तो पड़ा रहता है चारा...मैं इसके मुंह में कैसे डालूं? इसके पेट में कीड़े हैं सर...।”

“आगे से भौंकना तो तुज्हे बहुत आता है.. खाती ज्यों नहीं चारा

तुज्हारी नानी ? कहां है कीड़े इसके पेट में ? तुमने इसके पेट में घुसकर देखा है ? बड़ा तू सिवल सर्जन.. तुज्हारे पेट में ज्यों नहीं कीड़े पड़ गए...जो आगे से भौंकते हो हर समय...।”

बछिया ठीक होने के बजाए दिनों में ही और कमजोर हो गई थी। कीड़े मारने वाली दवा ने भी असर नहीं किया था। एक दिन मैं सरकारी वैटनरी डॉक्टर को भी बुलाकर लाया था। डॉक्टर ने टीके लगाए थे और दवा दी थी।

एक दिन रसोई का काम खत्म करके चारपाई पर लेटा ही था कि भैंस ऊंची-ऊंची रंभाने लगी। जब ज्यादा देर तक न रुकी तो मैंने दरवाजा खोलकर लाइट जलाई...बछिया मर गई थी। भैंस बछिया की ओर लपक रही थी...मैंने सोचा कि अगर साहब को अभी बताया तो वह शोर मचाने लगेगा कि बछिया मार दी। पहले ही मुश्किल से टिका है...तीन पैंग लगाकर ही साहब टुन्न हो जाता है। आज भी काफी पी हुई थी। फिर मैंने सोचा अगर साहब को अभी ना बताया तो फिर गालियां देगा कि रात को ही मुझे ज्यों नहीं बताया। मैंने साहब का दरवाजा नहीं खटखटाया...आवाज़ ही लगाई, “सर जी...सर जी...सर...” मुझे खर्राटों की आवाज़ सुनाई दी। फिर मैंने मन से फैसला किया कि अब साहब को ना ही जगाया जाए। गालियां ही खानी हैं, वो सुबह-सुबह भी ताजा मिल जाएंगी। मैं अपने कमरे में आकर लेट गया, भैंस अभी भी गला फाड़ रही थी। लेटे-लेटे मेरे मन में विचार आया कि बछिया ऐसे ही नहीं पड़ी रहनी चाहिए। स्थाने लोग कहते हैं कि मरा हुआ शरीर ढंका होना जरूरी होता है। बछिया पर बोरी डाल देनी चाहिए। शायद फिर भैंस भी चिल्लाना बंद कर दे। अपनी बेटी के असमय जाने का शोक मना रही है बेचारी माँ...वैण डाल रही है लंबे-लंबे...। मैं गया...बछिया पर बोरी डाल आया पर भैंस फिर भी चिल्लाने से न हटी। देर रात तक ऐसा करती रही, “आं...आं...आं...”

सुबह साहब को चाय का कप पकड़ाते हुए मैंने कहा, “सर जी, बछिया मर गई...।”

“मर गई... ? दिखाई दे रही थी मरने वाली.. अब भैंस दूध कैसे दिया करेगी... ?”

साहब ने चाय का घूंट भरते हुए कहा। साहब बछिया का मरना सुनकर दुखी नहीं हुआ था।

“सर जी...बछिया और ले आएंगे पशुओं की मंडी से।”

“उलटी बातें ज्यों करता है...एसे बछड़े और बछिया कब बिकते हैं कि जो मर्जी पकड़ो और भैंस का थन उसके मुंह में डाल दो...तुम खुद से ही बनाते रहते हो बातें...बात का अर्थ तुज्हे पता नहीं होता...तुम खुद ही चूस लिया करना दोहने से पहले।”

साहब थोड़ा गरम हो गया था।

मैं रसोई में जाने लगा, “जा कहां रहा है,...मेरी बात सुन जा पहले... जा...पहले उस मूर्ख किशन से कह कि इसे फिंकवाए, जा जल्दी।”

“सर जी, भैंस बहुत रोई रात को...बीच-बीच में वैण भी डालती है बछिया के...बेटी मर गई बेचारी की...”

साहब खीझ गया, “फिटे मुंह तेरा...मैं ज़्या करूं ? तू भी रो ले भैंस के गले लगकर...कह रहा है भैंस रोती है...जब तुम मरोगे तुज्हारी माँ भी ऐसे ही रोएगी कंजर के...।”

साहब से ऐसी सामने की बात सुनकर और डांट खाकर अब मैं सीधा किशन के घर को हो लिया था। वह सामने से आता राह में मिल गया, “रात को बछिया मर गई रे किशन सिंहा।”

किशन ऊंची-ऊंची हंसने लगा, “अच्छी खबर सुनाई है, मर गई तो फिर बांटो गुड़, बताशे कंजरो...दूध तो तुम दोनों पीते थे और चारा कुतरता रह जाता था मैं...बुरी नियत वालों के साथ ऐसा ही होना था।” किशन की हंसी रोके नहीं रुक रही थी।

जब बछिया को भैंस के पास से उठाने लगे तो वह और ऊंची चिल्लाने लगी। इधर- उधर कूदने लगी। साथ खड़ा साहब भैंस को पुचकारने लगा, “मुं...च...हे...चुप कर...”

बछिया साइकिल के पीछे लदी हुई कोठी से बाहर हो गई थी। साहब चुप्पी साधकर कमरे में जा रहा था। मैं भी उसके पीछे-पीछे था। भैंस लगातार चिल्ला रही थी।

“ओए जा...उधर पानी-धानी पिलाओ अपनी मौसी को, मेरे पीछे मुंह उठाए आ रहा है...बेवकूफ...जब देखो, मेरे पीछे ही टहलता दिखता है...।”

“सर जी पानी पिलाया था, पीती नहीं, ऐसे ही चिल्ला रही है.. शोक मना रही है बेचारी अपनी बेटी का..।”

साहब बुदबुदाता हुआ अंदर जा घुसा।

असल में जब से कोठी में भैंस आई थी मैं और किशन बहुत दुखी हो गए थे।

किशन की ड्यूटी सिर्फ दूध दोहने की थी और मेरी ड्यूटी भैंस की सेवा संभाल, चारा डालना, गोबर उठाना, भैंस को नहलाना होती थी। साहब की कोठी में आई तोहफे वाली देहाती भैंस की आमद ने अकेले मुझे ही नहीं, बल्कि और भी कई आदमी दूर-दूर तक दुखी कर दिए थे। और कौन-कौन किस-किस दुख से दुखी था, यह भी बता ही दूं! साहब के रीडर पर बहुत ही ज़्यादा बोझ था। बहुत सारी बेगारें वह भुगता रहा था और कुढ़ता रहता था और उधर जज साहब का कहना था कि तुम लोग मेरे नाम पर लोगों से रिश्वत लेते हो। रीडर मुझे हज़्ते के पैसे दे देता और मैं उनसे भैंस का चारा नज़दीक ही चारे के स्टाल से ले आता था। भैंस के लिए खल, दाना तथा और फीड या दवाई की ज़िम्मेदारी रीडर की ही थी और रीडर दुखी होकर बोलता था कि उससे घर रखी अपनी भैंस की सेवा उतनी नहीं होती, जितनी

साहब की भैंस की करनी पड़ रही है। डंगर डॉक्टर भी बहुत दुखी हुआ फिरता था.. साहब ने उसे कह रखा था कि वह हर सप्ताह भैंस को देखने ज़रूर आए...भैंस चाहे बीमार हो या न! डंगर डॉक्टर को हर हज़्ते दुखी होकर आना पड़ता था। उधर किशन बहुत सुबह उठता था और मैं उससे भी पहले उठकर भैंस को चारा आदि डालकर दोहने के लिए तैयार करता था। किशन दूध दोह देता और मैं केन भरकर साइकिल के पीछे रखता और बस अड्डे पर आकर मोहाली जाने वाली बस के ड्राइवर को लाकर पकड़ाता। साहब का दूध ढोते...ड्राइवर-कंडक्टर अलग दुखी थे।

एक दिन एक सरकारी वकील साहब की कोठी आया, साहब को मुज्त में उल्टी सलाह दे गया। कहने लगा, “सर, कोठी में इतनी जगह फालतू पड़ी है, ज्यों नहीं आप भैंस के लिए चारा यहीं पैदा करवाते.. अगर हुज़्म हो तो मैं अपने दोस्त की दुकान से बीज और खाद भिजवा दूं..।” लो जी ये चीज़ें भी आ गईं...मैं और किशन दिल से रोते हुए वकील को और साहब को गालियां देते हुए चारा बीजने लगे। चारे को पानी देने के लिए छोटी मोटर भी लग गई थी।

एक दिन वही सरकारी वकील आया तो साहब ने कहा, “वकील साहब आप सलाह बहुत बढ़िया देते हो...कहते हैं कि जो बोले वही कुंडा खोले...आप किसी अपने जानकार से कहकर एक ट्राली तूड़ी तो मंगवाओ...जब से हमारी भैंस की बछिया मरी है, यह कमज़ोर हो रही है।” और दूसरे दिन ही तूड़ी की ट्रॉली आ उतरी साहब की कोठी। अब? पशु एक, चारा तथा और खुराक चार पशुओं जितनी इकट्ठी होने लगी। मैं किशन से हंसने लगा, “तू भी एक बकरी रख ले.. राशन पानी साहब की कोठी से खत्म नहीं होगा.. जो मर्जी खिलाते जाना लेजा-लेजाकर अपनी बकरी को।”

भैंस सारा दिन कुछ न कुछ चरती रहती और गोबर भी बहुत ज़्यादा करती। मैं फावड़े से गोबर इकट्ठा करता, बट्ठल में डालता

और ले जाकर कूड़ेदान में फेंकता...दिल से भगवान का शुक्र भी करता कि शुक्र है कहीं किसी ने साहब को यह अज़ल नहीं दे दी कि गोबर के उपले पथवाया करो...बाज़ार में बिक जाया करेंगे। अगर कोई सलाह देता तो साहब के हुज़म के बाद यह उपले पाथने...धूप में सुखाने और फिर मार्केटिंग करने का काम भी मेरा ही होता।

एक दिन मैं भैंस का गोबर उठा रहा था। भैंस गोबर पर पैर रखे खड़ी थी। पैर हटा नहीं रही थी। मैं खीझ गया और फावड़ा भैंस के पांवाँ पर दे मारा। वह गोबर से हटी, मैंने गोबर खींचा तो फावड़ा बिखर गया। मिस्त्री से फावड़ा ठीक करवाने का नया पंगा आ खड़ा हुआ।

एक दिन रीडर बहुत दुखी हुआ और कहने लगा कि भई अब मेरे हाथ खड़े हैं...मुझसे भैंस के भारी खर्च की अब और सेवा नहीं होगी। मैंने साहब को यह बात बताई तो साहब ने दूसरे दिन ही स्टैनो को बुलाकर कहा, “रीडर को किसी से दस रुपए भी लेता हुआ मैंने देख लिया तो इसकी ख़ैर नहीं...सुन लो...तुम किया करो खर्च का बंदोबस्त खुद...कैसे करना है...कहां से करना है...तुम्हें पता ही है।”

स्टैनो को तो इशारा ही चाहिए था कि लोगों को लूटो...वो तो पहले ही तैयार फिरता था। खर्च निकालने की उसे साहब से खुली छुट्टी चाहिए थी, जो मिल गई थी। स्टैनो ने भी एक दो थानेदारों को कहकर भैंस के खर्च के साथ-साथ अपना प्रबंध कर लिया था। रीडर की जेब अब ठंडी रहती और वह सारा दिन कुढ़ता रहता।

धुंध पड़ने लगी। बड़ी सज़त सर्दी के दिन आ गए थे। हड्डियां ठिठुरती और टुर-टुर करते चलते फिरते काम करने वाले एक-दूसरे को गालियां देते रहते। दूध की केनी लेकर मुश्किल से ही बस अड्डे पर पहुंचता था। एक दिन केन साइकिल के पीछे से गिर गई...केन बांधने वाली घिस चुकी रस्सी टूट गई थी। जब मेरा साइकिल एक गड्डे से गुज़रा...केन नीचे लगी और ढक्कन खुल गया। मेरे साइकिल

से उतरने तक आधे से ज्यादा दूध गिर चुका था। शुक्र है कि केन में गड्डा नहीं पड़ा था...नहीं तो जज साहब मुझे गड्डे में डाल देते और फिर पता नहीं, कितने दिनों तक साहब ने केन के गड्डों का रोना रोते रहना था। ख़ैर! मैं बुरी तरह डर गया था...अब ज़्या करूं? गिरा दूध कहां से लाऊं? अगर साहब को दूध गिरने के बारे में बताऊंगा, तब भी गालियां और जूते पड़ने ही थे। सो...मैं हौसला करके साथ लगे नल पर गया और काफी सारा पानी केन में डाल लिया। ढक्कन लगाया और टूटे हुए मन से लाकर केन ड्राइवर को पकड़ाई...। आगे ड्राइवर भी कौन-सा कम था किसी से? बोला, “कैसे हो अर्दली साहब...आज तो फौजें लेट हैं...लगता है सुबह-सुबह साहब से कुछ ईनाम मिला है।”

मैं कुछ ना बोला और साइकिल पर चढ़ गया। मैं अज़सर अपने दुखों का रोना ड्राइवर से रो लेता था। कभी-कभी वे खड़े चाय पी रहे होते तो मुझे भी सुलह मारकर चाय पिला देते। तब इनके साथ बातें साझा हो जाती थीं।

मैं और साहब कचहरी आ गए थे। जब दोपहर को मैं साहब की रोटी लेने कोठी गया तो साथ वाली कोठी के अर्दली रामे ने बताया कि आज तुम्हारी कोठी में फोन बहुत देर तक बजता रहा...(उस समय मोबाइल फोन नहीं आए थे, लैंडलाइन फोन ही थे)...मुझे शक हुआ कि भगवान न करे, ज़रूर बीबी जी का फोन आया होगा। पर फोन कौन उठाता? मैं और साहब तो कचहरी थे। जब मैं रोटी बनाकर लेकर कचहरी आया...तब जज साहब चैंबर में बैठे हुए बहस सुन रहे थे और बहस भी कत्ल के केस की थी...मेरी जगह पर अर्दली के तौर पर किशन खड़ा था। जब मैं साहब की रोटी वाला टिफिन रिटायरिंग रूम में रखने लगा तो साहब का दज़्तर वाला लैंडलाइन फोन बजने लगा। मैंने फोन का चोगा कान से लगाया, बीबी कड़क रही थी, “साहब कहां है, मेरी बात करा अभी।”

मैंने कहा, “बि...जी..., साहब तो बहस सुन रहे हैं...बिजी हैं बहुत साहब।”

बीबी चीखकर बोली, “तेरा और तेरे साहब का यह बिजी-बिजी वाला और बहसें सुनने वाला स्यापा कब खत्म होगा? चल-चल...मेरी बात करवा...कुजा कहीं का...दूध की चोरी करने लगे...।”

बीबी की झिड़क सुनकर मेरा पेशाब निकलने वाला हो गया। मैं भागकर साहब के चैंबर में आया और धीमी आवाज़ में साहब के कान में कहा, “सर, बीबी जी का फोन है...वह किसी प्रोज़्लम में लगते हैं...होल्ड पर है फोन सर...।”

साहब ने वकीलों की बहस बीच में ही रोक दी और जाकर फोन का चोगा पकड़ा। मैं भी धीरे-धीरे साहब के पीछे जा खड़ा हुआ था।

“अच्छा, अच्छा...कोई ना-कोई बात नहीं...मैं पता करता हूँ इनकी जून मंडली से...यह सारे कुजे के पिल्ले हैं...इसे तो पता ही होगा कि ज़्यादा हुआ है, तुम भी यहां के जयराम से पता करो...यही मोहाली बस अड्डे से दूध लेने लगा अड्डे में ही बेच देता होगा...नाम इसका जयराम है, है कुजे का हड्ड।”

साहब को मोहाली वाले नौकर पर शक होने लगा था।

फोन रखकर साहब मुझे मुखातिब हुए, “ओए आज ज़्यादा किया, दूध भेजा है या पानी भेज दिया...तुम लोग साले सारे चोर हो...लगता है तुम रास्ते में दूध बेचने लगे हो चाय के खोखे वाले को...दूध बेचकर बाकी पानी ठोक दिया होगा।”

मैं रो दिया, “नहीं जी सर...बिल्कुल नहीं...कभी भी नहीं सर...गुरु की सौगंध लगे जी...।”

“अच्छा फिर...वो ड्राइवर-कंडक्टर हरामज़ादे...ये दूध चोरी करते होंगे...।”

“नहीं जी सर...नहीं...कभी पहले ऐसा नहीं हुआ जी...सौरी सर...मैंने ही बात छुपाई थी...आज दूध गिर गया था...मैंने ही उसमें

पानी मिला दिया था...सर आगे से ना दूध गिरेगा और ना ही कभी ऐसी शिकायत आएगी...।”

“हट-हट कुजा...पागल साला...।” यह कहता हुआ साहब चैंबर की ओर चला गया था...जहां वकील बाकी बहस सुनाने के लिए उसका इंतज़ार कर रहे थे।

साहब का पैर टूटा

साहब को दो गनमैन भी मिले हुए थे...जो साहब के कचहरी जाने के समय कोठी के आगे सुबह आ हाज़िर होते और फिर शाम को कचहरी से कोठी तक...कार में साथ बैठकर साहब को छोड़ने आते। कचहरी में वह साहब को बिठाकर खाली बैठे कुर्सियां तोड़ते, ज़्हाइयां लेते रहते...बारी-बारी चाय पी आते...गप्पें मारकर समय बिताते। साहब उनकी ओर से बेपरवाह ही था...उन्हें कोई काम नहीं कहता था कभी। जिस दिन कभी किसी अपील का फैसला होना होता, तो वह पूरी तरह चौकन्ने रहते...अपील जिसके हक में भुगत जाती...वह वकील के अड्डे तक उसके साथ जाते और अपने हिस्से का 'सेवा-पानी' ले आते। अभी यह 'सेवा-पानी' लेने वाला धंधा मेरी समझ में नहीं आया था। मैं आवाज़ें मारता रह जाता था...चल भई...फलां बनाम ढिमका हाज़िर हो...या फिर चाय पानी ढोता और वकीलों को आवाज़ें मारता...इधर रीडर और स्टैनो अपना 'सेवा-पानी' करवा लेते।

यह 'सेवा-पानी' वाला धंधा हमारे भारतीय प्रशासनिक ढांचे में इतना ज़्यादा ढल और मिल चुका है कि इसके बिना एक कदम भी चलना मुश्किल हो गया है। भूखी और खूंखार चीलों की तरह बाबूशाही 'सेवा पानी' के लिए मरने-मारने पर उतरी हुई है।

एक दिन साहब ने बारह दुकानों की अपील मंजूर की। किसी साधारण जट्ट की दुकानें थीं और अपील बनिए के हक में भुगत गई थी। जैसे ही साहब हुज़्म सुनाकर चैंबर से उतरा और रिटायरिंग रूम में गया तो मैं पानी का गिलास साहब की मेज पर रखकर बाहर आया। रीडर बोला, "ओ जा...सरदार जी से अपनी 'सेवा-पानी' पकड़ ले।"

शायद रीडर ने जान बूझकर या ग़लती से ही कह दिया था, "सरदार जी से...।"

मैं दौड़ा और सरदार जी के पीछे जाकर कहा, "बाबा जी मेरा 'सेवा-पानी'?" वो बुजुर्ग सरदार मुझे कुजे की तरह पड़ा, "अपील तो बनिए के हक में भुगता दी माँ के खस्म...सेवा-पानी मुझसे किस बात का?"

मैं मारा शर्म का पीछे भागा।

जब साहब कार में बैठने लगता तो गनमैन बैठते ही ड्राइवर के साथ वाली सीट पर बैठ जाता...साहब की ओर से कार का दरवाज़ा मैं ही बंद करता था। फिर साथ ही मैं सेल्यूट भी मारता। अगर मैं कचहरी पहले पहुंचा होता तो कार का हॉर्न सुनकर चौकन्ना हो जाता, कार रुकती...मैं साहब की तरफ वाला दरवाज़ा खोलता...सेल्यूट मारता...।

एक दिन कार चलने लगी तो साहब अभी अच्छी तरह बैठा नहीं था। मैंने दरवाज़ा ज़ोर से बंद कर दिया। साहब का पैर उसमें आ गया। साहब चिल्लाया, "ओ हो...हाए! तेरी बेड़ी बैठ जाए...मैं मर गया।"

ड्राइवर ने कार रोक ली थी। साहब स्लीपर से पैर निकालकर हाथों से दबा रहा था। मैं डरता हुआ पीछे खड़ा था।

"आ जा-आ जा कोठी आ जा...तुज्हे मैं बताता हूँ...कोठी आना, तोडूंगा तुज्हारी टांगें...चलो बढ़ाओ कार..."

साहब मेरे ऊपर दांत पीस रहा था। जिस हिसाब से साहब ने दर्द माना था, उससे ऐसा लगता था, जैसे पैर ज़्यादा दब गया है। अब कोठी जाकर मेरी शामत आने वाली थी। आखिर मैं, मन मजबूत करके कोठी पहुंचा। गनमैन गेट के सामने खड़ा हँस रहा था मुझे आता देखकर। किशन को डॉक्टर लाने के लिए भेजा। किशन ने अच्छी तरह गनमैन की बात भी ना सुनी कि ज़्यादा हुआ और ज़्यादा नहीं...और कौन-सा डॉक्टर लेकर आना है। उसकी समझ में आया कि कल-परसों की भैंस बीमार है...डंगर डॉक्टर को लाना होगा। किशन अभी कोठी के

अंदर घुसा ही था कि उसके पीछे ही डंगर डॉक्टर आ गया...साहब ने पूछा, “आप कैसे आए?”

डॉक्टर ने बताया, “किशन बुलाकर लाया है जी...सर.. हुज्म कीजिए।”

साहब ने उसी समय किशन को गालियां देनी शुरू कर दीं...वह सुनता रहा और शर्मिदा होता हुआ डंगर डॉक्टर लौट गया। साहब आंगन में कुर्सी पर बैठा हुआ था, टांग सीधी करके बिछाई हुई थी।

“तू माँ...मेरी ओर ज़्यादा मुंह उठाए आ रहा है...निकल जा यहाँ से...कुज़ा कहीं का...अंधा कहीं का...ऐसे बंद करते हैं दरवाज़ा? पैर तोड़ दिया मेरा...।”

साहब बहुत गुस्से में था। मैं सिर झुकाकर बुत बना खड़ा था।

अब असली डॉक्टर आ गया था...आदमियों वाला...लगता था जैसे चोट का सारा कारण गनमैन ने डॉक्टर को पहले ही समझा दिया था। डॉक्टर बोला, “बेटे...दरवाज़ा ध्यान से बंद करते।”

मैं ज़्यादा बोलता? साहब फिर शुरू हो गया, “यह तो अंधा है...अंधा बिल्कुल ही अंधा...कोई अज़ल नहीं इसे...पता नहीं किसने भर्ती कर लिया साला घोगड़ कौवा?”

“डॉक्टर साहब...चोट ज़्यादा तो नहीं?” साहब ने डॉक्टर से पूछा और ‘हाए-हाए’ करते हुए टांग समेटी।

“नहीं जी सर...चोट तो कोई ख़ास नहीं...बचाव हो गया...आयोडेज़स लगाते रहिए...बाकी रात को टकोर करना...सेक देना...ठीक हो जाएगी।”

डॉक्टर ने आयोडेज़स की शीशी खोली। साहब के पैर पर आयोडेज़स मली गई। शीशी बंद करता हुआ डॉक्टर बोला, “यह लो बेटे, रात को एक बार जब साहब सोएंगे तब लगा देना...सेक भी देना है।”

“यह ज़्यादा लगाएगा...लाइए मुझे पकड़ाइए डॉक्टर साहब आप...मैं खुद ही लगा लूंगा।” साहब ने डॉक्टर से शीशी पकड़ ली।

शाम हो गई थी। किशन काम कर रहा था, सारा तमाशा देखकर खुश भी हो रहा था। पर आज किशन को जितनी गालियां मिलीं साहब से...उतनी सारी नौकरी में नहीं मिली होंगी।

मेरे कान के पास मुंह करके कहने लगा, “साहब भी तुमसे ही ठीक होता है...मेरे जैसे को ज़्यादा समझता है...अच्छा पैर तोड़ साले का, मैं तो कहता हूँ कि साले की पूरी टांग पर प्लास्टर चढ़ता...फिर ठीक होता काम।”

मैं आज साहब के कमरे में नहीं गया था। जब से किशन काम पर आया हुआ था अब मैं कभी-कभी गांव भी चला जाता था पर जाता था रात गए, किशन के साथ सारे काम करवाकर। जब काफी अंधेरा हो गया तो मैंने किशन से कहा, “यार जा, जाकर साहब को पूछकर आ कि मैं गांव जाऊँ?”

किशन ने जाकर साहब से पूछा, “साहब, निंदर गांव जाने के लिए छुट्टी मांग रहा है।”

साहब लाल-पीला हो गया, “उसकी ज़्यादा टांगें टूटी हैं? मेरे सामने ज्यों नहीं खड़ा होता आकर वो? हैं? मेरा पैर तोड़कर अब गांव जा रहा है साला मूर्ख कहीं का। ओए मरासी...कहां है तू ओए कुजे...?”

मैं सिर नीचा किए, साहब के सामने जा खड़ा हुआ। “ओए, सिर झुकाकर ना खड़ा हो यहां...जा पहले पानी का जग ला...पानी खत्म हो गया है...ला पानी।”

साहब दो-तीन पैग लगा चुका था। पानी लाया गया। और पैग बनाने लगा। किशन रासोई में चला गया।

“सर जी...मैं जाऊँ जी...मुझे गांव जाना है।”

“गांव जाकर तुमने अंडे देने हैं...मेरा पैर तोड़कर अब गांव जाना है? तुज्हे मैं ज़्यादा-ज़्यादा समझाऊँ उल्लू के पट्टे...मुझसे किन युगों के बदले ले रहा है तू...तेरी गर्दन तोड़ूँ उठकर मैं? तेरी टुंग-लुंग तोड़ूँ या तेरी गर्दन? दोनों में से ज़्यादा तोड़ूँ? बता मुझे ज़्यादा तोड़ूँ? मेरा पैर तोड़कर

गांव जाएगा ? अपने माँ-बाप से कहना जाकर मैंने साहब का पैर तोड़ दिया...कहना जाकर...अगर मैं तेरी टांग काट दूँ तू चल लेगा...अगर तेरी उंगली काट दूँ अभी, तेरी टुंग-लुंग कैसे बजेगी ? बजेगी ? अगर बजेगी तो बता ?”

“सर जी, ग़लती हो गई माफ़ी दे दो जी...मैंने कौन-सा दरवाज़ा जान बूझकर बंद किया था...आगे से ध्यान रखूंगा जी...।” मैंने चुप तोड़ी थी।

“कंजर के आगे से बोलना और माफियां मांगना तो तुम्हें मिनट में आ जाता है...काम सारे उलटे ही करता है...जा-जा गांव अपने...रो जाकर माँ-बाप के सिर कि साहब का पैर तोड़ दिया...जा, पीछा छोड़ मेरा...मर कहीं जाकर...गधा कहीं का।”

साहब बेचारे के बस से बाहर की बात थी। चोट के दर्द के कारण वह ज़्यादा पी गया था...अब बिन ब्रेक के बोल रहा था। मैं दुखी तो था ही, पर गांव जाने का उत्साह था...साइकिल कोठी से निकाला और सुख की सांस आने की उज़्मीद हुई।

सड़क इतनी बुरी थी कि साइकिल सारे रास्ते खड़ब-खड़ब करता ही जाता, अंधेरे के सिवाए और कुछ दिखाई ही नहीं देता था। दिन छिपते ही यह रास्ता भी चलना बंद हो जाता था, कोई-कोई ही गुज़रता था उस समय। सारी सड़क सूनी दिखाई देती थी...चुप। जब मैं कोई सौ पैडल मार लेता तो घूमकर शहर की ओर देखता...कोई-कोई ऊंची लाइट जलती नज़र आती.. जैसे-जैसे गांव नज़दीक आता वैसे-वैसे साइकिल भी तेज़-तेज़ भागने लगता...मुझे घर के पास आने का हौसला होता जाता। धान के खेत से मेंढकों की डैँ-डैँ भी एक स्वर में सुनाई देती।

खेतों में बौरियों की ढाणी के कुछ घर थे। बौरियों ने बहुत तकड़े कुज़े रखे हुए थे...जिन्हें रात को वे लोग खुला छोड़ देते थे और वो सड़क पर आते-जाते की ख़बर लेते। अगर मेरा साइकिल थोड़ी-सी

भी आवाज़ करता तो वे भौंकते भौंकते मेरे पीछे पड़ जाते। कुज़ा भले एक ही भौंकता था पर उसकी आवाज़ सुनकर दूसरे लोगों के कुज़े भी भौंकने लगते थे। कुज़े पीछे पड़े देखकर मैं साइकिल भगा लेता। जब साइकिल की चैन उतरने की याद आती...तो साइकिल धीमा कर लेता...चैन ठीक करवाने का समय ही नहीं मिलता था...साहब का स्यापा खत्म हो...तभी कुछ और करूं ? जब मैं अपने पीछे पड़े कुज़ों को गालियां देता था तो साहब को भी गालियां निकल ही जाती थीं। अपनी पीछे भौंकते भागे आ रहे कुज़ों को कभी मैंने ऐसे भी कहा था, “भौंको-भौंको बहन के यारो...भौंको तुम लोगों का बाप सबका...वो शहर में भौंकता है...अब वो दारू और अन्न से पेट भरकर खरटि मार रहा है और तुम भूखे मरते भौंकते फिरते हो मेरी तरह...आधी रात गई को भी चैन नहीं तुम्हें सालो...भौंको भौंको...और भौंको...बहन के यारो...।”

इस तरह तपता हुआ मैं गांव पहुंच जाता था। सुबह गुरुद्वारे के बाबा जी के बोलने पर जग जाता...चाय वगैरह पीकर फिर साइकिल पर टांग रख लेता। अब मैं कुज़ों से बचने के लिए डंडा भी साथ रखने लगा था। जब मैं डंडा घुमाता कुज़े दूर-दूर भौंकते रहते, पास ना आते।

मैं अदालत के दरवाज़े के सामने खड़ा होकर बोलता, “चल फलां बनाम फलां हाज़िर हो...” तो जैसे बरामदे की छत गूंजती। पेशी भुगतने के लिए आते सारे लोग मेरे अच्छे जानकार हो चुके थे। लोग बातें करते थे...“भई बहुत ऊंची आवाज़ है छोरे की...गूंज डालती...।”

कोई कहता, “बेटा धीरे लगाया करो आवाज़, बहुत ऊंची बोलते हो यार...”

एक गांव से कोई बूढ़ी माता थी। उसका अपने सौतेले बेटों के साथ ज़मीन का झगड़ा चल रहा था...वह हरेक पेशी पर आती थी। सुबह बहुत जल्दी ही अदालत के दरवाज़े के बाहर आ बैठती थी...अभी

स्वीपर आया नहीं होता था...वह आई बैठी होती...एक-आध रोटी पकाकर साथ ही बांध लाती। मैं कोशिश करता कि बूढ़ी माता को तारीख मिले और वह जल्दी घर जाए। उसके सौतेले बेटे भी बराबर आकर...सामने बैठे रहते...मैं कहता, “माताजी तुम्हारी तारीख डलवा देता हूँ, जाओ तुम घर।”

वह कहती, “मैंने जाकर कौन-सा चरखा कातना है बेटा...वो देखो बैठे मेरे दुश्मन...इनके नाक में दम करके ही छोड़ूंगी...सारा-सारा दिन बैठें अब काम छोड़कर...स्वाद आए इन्हें...मुझे घर जाने की कोई जल्दी नहीं बेटा।”

एक दिन बूढ़ी माता ने अपनी जेब से एक लिफाफा निकाला और उससे एक कपड़े के टुकड़े में बंधा दस का नोट निकालकर मेरी ओर बढ़ाकर बोली, “लो भई जीते रहो! तू तो बहुत अच्छा है बेटा...इतना मोह करता है...ले...चाय पी लेना...मीठा लेकर खा लेना दुकान से बेटा...ले।”

“ना ना माताजी,...मैं तुमसे नहीं लूंगा? ना ना.. मैं नहीं लूंगा पैसे!” वह मेरे रोकते-रोकते भी जबर्दस्ती मेरी जेब में दस का नोट डाल गई।

कई बार मैं साहब तथा और स्टाफ के लिए केतली में चाय डलवाकर लाता था तो एक कप फालतू बूढ़ी माता के लिए भी डलवा लेता था। एकाध बार तो वह ना-ना करती...फिर कप पकड़ते ही दो घूंटों में चाय पी जाती...उसके लड़के भी सामने बैठे देखते रहते।

जब साहब की कार अदालत के सामने आकर रुकती तो साहब बड़ी मस्ती से कार से उतरता...टुमक-टुमक चलता...एक गनमैन आगे और एक पीछे चलता। अदालत के दरवाजे के सामने आए बैठे लोग साहब के सज्मान में उठकर खड़े हो जाते थे। बूढ़ी माता भी उठती और हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती। जब साहब उसके पास से गुजरते तो वह अपने जुड़े हुए हाथ अपने माथे को छुआती। मैं यह देखकर हैरान

होता कि हमारे साहब का कितना सज्मान है। बूढ़ी माता की उम्र साहब की माँ की उम्र जितनी होगी...पर बूढ़ी माता साहब की पदवी को सज्मान देती है। वाह! कितना सज्मान...इज्जत-शान...हमारे जज साहब के हिस्से आई है।

आज कचहरी आधा दिन ही लगनी थी। किसी दिन-त्योहार के संबंध में आधी छुट्टी थी। आज साहब ने एक केस का फैसला करना था...जो एक जलैकिया जग्गा सिंह से संबंधित था...उससे पोस्त पकड़ा गया था। जलैकिया नौजवान ही था। वह सुबह ही अदालत के बाहर आकर बैठ गया था और बीच में कई बार उठ-उठकर इधर-उधर गया था। दोपहर हुई...साहब ने हुज्म सुनाना था...मुझसे कहा, “बेटा, आवाज़ लगा, करें इनका निपटारा।”

मैंने आवाज़ लगाई, “चल ज़ई-सरकार बनाम जग्गा सिंह हाज़िर हो।” पर जग्गा सिंह ना आया। मैंने फिर आवाज़ लगाई पर जग्गा सिंह ना आया।

“सर जी...वो तो है नहीं बाहर कहीं...आवाज़ सुनकर भी नहीं आया।”

साहब चैंबर से उठा...रिटायरिंग रूम में जा बैठा। कुछ फाइलें देखीं। बीस मिनट के बाद फिर कहा, “चल ओए आवाज़ लगा उसे, करूं निपटारा उसका।”

मैंने फिर आवाज़ लगाई, “सरकार बनाम जग्गा सिंह हाज़िर हो।” जग्गा सिंह ना आया।

“सर जी, है नहीं वो कहीं।”

साहब इतना सुनते ही खीझ गया, “कहां गया मरा...अदालत में हाज़िर नहीं हुआ? टिककर नहीं बैठता...मैंने सज़ा सुनानी है...वो बाहर ज्यों घूम रहा है...।”

मैं भी थोड़ी गर्मी खा गया था जग्गा सिंह पर। जब मैं फिर अदालत

के दरवाजे में उसे देखने आया तो आवाज़ लगाई, “जग्गा सिंह हाज़िर हो,” तो जग्गा सिंह ज़लैकिया सामने से चला आ रहा था...मैं टूटकर उसे पड़ा, “तुम्हें पता नहीं? तुम बाहर घूम रहे हो...साहब ने तुम्हें सज़ा सुनानी है...मैंने स्वाज़ाविक ही अचेत मन...जैसे साहब से सुना था कि सज़ा सुनानी है...वैसे ही बोल गया था। चल अंदर पेश हो।”

मेरी इतनी बात सुनते ही जग्गा सिंह पीछे भागा। मैंने शोर मचाना शुरू कर दिया, “भाग गया ओ...मुजरिम भाग गया...पकड़ो...मुजरिम भाग गया...।”

गनमैन उसके पीछे भागा। मैं साहब के रिटायरिंग रूम में दौड़कर आया तो साहब खड़ा था, “साहब जी जग्गा सिंह भाग गया...।”

“चल यहां से कुज़े...।” साहब कड़का।

साहब ने मुझे बहन की गाली देते हुए गले से पकड़ लिया, जोर से मुज़का दे मारा, “तू जज है या मैं? तुमने ज्यों हुज़म सुनाया ओए? तुम्हें...तुम्हें किसने कहा था? जज तू है या मैं? खुद तो तुमने मरना ही है, मुझे ज्यों मरवाता है...तुम्हें आवाज़ें लगाने को रखा है या सज़ा सुनाने को...साले कुज़े तुमने ज्यों ऑर्डर सुनाया।”

साहब गालियां दे रहा था। स्टैनो और रीडर भी आ गए थे। मैं एक तरफ होकर सिर नीचा करके खड़ा था।

मैं रिटायरिंग रूम से बाहर आ गया था।

गनमैन तथा और सिपाही जग्गा सिंह को काबू करके आ रहे थे। जब साहब के पास पेश किया गया तो साहब ने पूछा, “ज्या बात थी? भाग गए थे? भागे ज्यों...यह बताओ पहले।”

“सर जी, जब इसने ऑर्डर सुनाया...मैं डरकर भाग गया...मुझसे भागा नहीं गया जी...रास्ते में गिर गया मैं।”

मैं फिर थोड़ा दूर हट गया। सारी कचहरी इकट्ठी हुई थी।

“निंदर ने ही हुज़म सुना दिया...भई आदमी भाग गया, आदमी भाग गया।”

लोग चर्चा कर-करके हंस रहे थे। जग्गा सिंह को हथकड़ी लगाई गई। साहब चाहता था कि यह बात ठंडी हो जाए पर बात ठंडी ना हुई...मुज़्य ज़िला सैशन के नोटिस में बात आ गई थी। साहब सैशन जज के पास गया और उसे ठंडा कर आया था। कसूर ज़्यादा साहब का ही माना जा रहा था ज्योंकि उसने मुझे ही गर्मी-गर्मी में हुज़म सुना दिया था। वैसे कसूर तो हम दोनों का ही था...कानूनन यह बहुत ग़लत बात थी।

खैर...बात आई-गई हो गई। वैसे कई दिन वकील और मुंशी मुझे छेड़-छेड़कर हंसते रहे थे।

मेरा और साहब का तबादला

तीन चार दिनों के बाद गांव आया तो बापू ने चिट्ठियों का बंडल पकड़ाया। ये सब चिट्ठियां मेरे लेखक और कलाकार दोस्तों की थीं...जब मैंने पढ़ीं तो सबने यही उलाहना लिखा हुआ था कि जब से तुम अर्दली लगे हो...चिट्ठी-पत्र लिखना भी बंद कर दिया है! कईयों की टिप्पणी थी कि तुज्हारी कला बर्बाद हो गई लगती है।

रिंकू की चिट्ठी भी निकली...जो जज साहब और बीबी जी ने उससे लिखवाई थी...उनका भी यही गिला था कि तुमने इतनी देर से ना कोई फोन किया...ना मिलने ही आया। (तब मोबाइल फोन नहीं होते थे, लैंड लाइन फोन ही थे) रिंकू ने भी उलाहना दिया हुआ था। पहले जज साहब, बीबी तथा उनके बेटे रिंकू को मैं कभी नहीं भुला पाया था, पर इधर थोड़ा भी खाली समय ना मिलने के कारण लेखक-कलाकार दोस्तों से और रिंकू से भी एक तरह से टूट चुका था।

रात गांव में काटी। सुबह कोठी पहुंच गया। किशन आंगन में कुर्सी बिछाकर बैठा था। मुझे दरवाजे में देजकर बोला, “ओ आ भई तूंबी वाले...अब लूट मौजों के दिन...साहब तो आज सुबह चंडीगढ़ चला गया है...फोन आया था रात को! साहब परसों आएगा...अब तुम यहां बैठकर तूंबी बजा...और कहानियां जोड़ बैठकर।”

मुझे साहब के चंडीगढ़ जाने की हैरानी भरी खुशी तो हुई ही...बल्कि विचार भी सूझा। मैंने किशन से कहा, “बात सुन यार! तुम मेरे बड़े भाई हो...मेरी मिन्नत मान लो...मुझे रिंकू की चिट्ठी आई है...तुज्हे भी उसने नमस्ते लिखी है और साहब और बीबी ने मुझे बुलाया है...मुझे जा आने दे यार...सुबह लौट आऊंगा दिन चढ़ने तक...जा आने दो...।”

किशन ने कहा, “अच्छा फिर अगर जाना है तो अभी चला जा,

सुबह तक आ जाना...और मेरी ओर से जज साहब, बीबी जी और रिंकू को नमस्ते कहना।”

किशन से छुट्टी लेकर मैं पहले जज साहब के परिवार को मिलने के लिए चल पड़ा। डेढ़ घंटे में बस उनके शहर ले गई। रिंकू और बीबी घर में ही थे। साहब कचहरी थे। रिंकू मुझे आया देखकर खुशी-खुशी गले लग रहा था। अपनी पढ़ी किताबों के नाम गिनवाने लगा।

बीबी ने कहा, “अरे मुश्किल से लड़का आया है...मुझे भी कोई बात कर लेने दे...पहले इसका हाल चाल तो पूछ...अपनी ही बातें सुनाने बैठ गया है...।”

बीबी मुझे मेरे साहब के बारे में पूछ रही थी। मैं बता रहा था। रिंकू कह रहा था, “निंदर भाई...तुज्हारी तूंबी का ज़्या हाल है? अब तुमने कोई कहानी-वहानी लिखी है? कहां छपी है? अब तुज्हारी साहित्यकारी ज़्या कहती है फिर...अर्दली वाला काम अच्छा है...सुनाओ कोई नई ताज़ी...?”

रिंकू फटाफट सवाल किए जा रहा था। मैं ऐसे ही जवाब दे रहा था। बीबी मेरी बातें सुनकर बोली, “बेटा.. बात सुन मेरी...हौसला ना छोड़ना। अफसर के मूड की बात होती है...रिंकू के डैडी का स्वभाव देख लो...तुज्हे तो पता है कि कभी किसी नौकर को ओए कहकर नहीं बुलाते...बेटा, बेटा कहते हैं...चलो...फिर तुज्हे तुज्हारा साहब प्यार भी करता है। अगर शराब पीकर उल्टा सीधा बोलता है तो चुप रहा कर...सभी एक जैसे नहीं होते...कोई और अच्छा अफसर आ जाएगा।”

बीबी की बातें हौसला बढ़ाने वाली और अच्छी थीं। इस तरह बातें करते काफी समय बीत गया। जज साहब भी कचहरी से आ गए। मैंने पांव छुए। साहब बड़े खुश हुए। पास बिठाकर बातें पूछने लगे। मैं हैरान था कि यह भी तो जज ही है...और वो हमारे वाला भी जज ही है...कितना अंतर है। यह मुझे अपने बच्चे जैसा प्यार देते हैं और वो

गालियां भी देता है, मरासी कहकर मज़ाक भी उड़ाता है, गीत सुन-सुनकर अपना मनोरंजन भी करता है।

मैं और रिकू बाज़ार चले गए। रिकू का चुलबुला स्वभाव और उसकी साहित्यिक लगन से मैं बड़ा खुश था। वह मुझे अपने छोटे भाई की तरह लगता था। आम अफसरों के बच्चों की तरह उसमें कोई बुराई नहीं थी अभी तक... इस कारण यह उसकी अच्छाई और गुण थे। काफी देर हम बाज़ार में घूमते रहे, बातें करते हुए घर लौटे।

उधर पीछे कोठी में भले ही किशन था...और साहब चंडीगढ़ गया हुआ था पर मुझे फिर भी साहब के आ जाने का और कोठी का फिक्र लगा रहा।

रोटी खाकर लेटते ही मैंने साहब और बीबी जी से कह दिया, “मैंने तो सुबह आपके सोए-सोए ही चले जाना है...अभी मेरी नमस्ते कबूल कर लो।”

बीबी बोली, “यह लो फिर अपना सामान। मैं तुम्हें अभी दे दूं संभाल ले...अगर सुबह ही जाना है तो।”

बीबी ने मेरे लिए एक बढ़िया पैंट-कमीज़ का अनसिला सूट लेकर रखा था। कुछ रुपए भी उसने जल्दी से मेरी जेब में डाल दिए। मैं उनके प्यार-सज़्मान के आगे ना ज़्या करता? सुबह मुंह अंधेरे ही मैं और रिकू बस अड्डे आए...पहली बस मिल गई।

समय पर कोठी आकर मैंने किशन को खुली छुट्टी दे दी...वह अपने घर चला गया। दूसरे दिन सुबह किशन ने आकर बताया कि साहब शायद सीधा कचहरी आएगा...तू कचहरी चला जा...। मैं कचहरी में समय पर हाज़िर था...कचहरी लगने से पांच मिनट पहले साहब आ गया...मैंने सत श्री अकाल कही...साहब ने अनसुनी-सी कर दी।

“जा देखकर आ...सैशन जज साहब आ गए या नहीं।” साहब ने हुज़्म लगाया। मैं देख रहा था...साहब काफी उदास था। चेहरा भी बदला-बदला-सा था। ख़ैर हो!

सैशन जज साहब आए हुए थे। साहब उन्हें मिलने चला गया। दस मिनट बाद लौट आया और रीडर से कहा, “सारे केसों में तारीखें डाल दो...मैं कोठी जा रहा हूं।”

कार में बैठकर साहब चला गया। मैं हैरान था कि आखिर माजरा ज़्या है? साहब ने आज कचहरी ज़्यों नहीं लगाई? लौट ज़्यों गया है? आधे घंटे बाद बात खुल गई...सुपरिंटेंडेंट सैशन ऑफिस से पता चला कि साहब का तबादला हो गया है। साहब को तुरंत नई जगह पर जॉइन करने के लिए हुज़्म हुआ था।

इसी कारण साहब तो उदास था ही, बल्कि घबराया भी फिरता था। किसी ने हाईकोर्ट में शिकायत की थी...हाईकोर्ट ने साहब को हुज़्म दिया कि फलां जगह जाकर तुरंत जॉइन करो और शिकायत पर इंज़ायरी लग गई थी।

कचहरी से काम निपटाकर मैं कोठी पहुंचा। किशन आंगन में घूम रहा था। वह धीरे से बोला, “ज़्यों ओए...साहब की बदली हो गई...सुना है शिकायत भी हो गई...? कल जाना है साहब ने ...ज़्या हो गया?”

किशन को साहब ने खुद ही बता दिया था बदली के बारे में। किशन ने कहा, “साहब ने आते ही दारू पी ली और अब कुंडी बंद करके बैठा है...तुम मत बुलाना साहब को...फिर कहोगे गालियां दीं...अब जाते-जाते से गालियां ना ले लेना।”

मैं हैरान था कि इतनी जल्दी साहब का तबादला हो गया...? हैरानी के साथ साहब के यहां से चले जाने का थोड़ा-सा गम भी होने लगा था। भले साहब कैसा भी था...आखिर था तो मेरा साहब ही। अगर मुझे झिड़क लेता था तो फिर मना भी लेता था।

काफी शाम हो गई थी। किशन भी आज अपने घर थोड़ा समय जाकर वापस कोठी आ गया था। “ओ किशन? किशन ओए?” साहब ने आवाज़ लगाई।

किशन भागकर गया...मैं उसके पीछे-पीछे था...किशन कमरे में घुसा...मैं दरवाजे के बाहर ही खड़ा हो गया।

“ओए वो कहां है...निंदर कहां है?”

“सर जी सत श्री अकाल।” मैं आगे हुआ।

“ज्या करता फिरता है ओए तू? बाहर बैठा ज्या करता था?...बात सुन...तुम और किशन मेरा जरूरी सामान संजालो...तुम्हें पता है ओए? मेरी बदली हो गई, मुझे जाना है...ज्यों ओए पता है तुम्हें?”

मैंने सिर नीचा करके धीरे से कहा “हां जी...” फिर साहब चुप कर गया। साहब अपने कपड़े और बिस्तर इकट्ठे करवाने लगा हुआ था। फिर रसोई का मोटा-मोटा सामान संभाला गया। चलते फिरते साहब ने दो-तीन पैग भी लगा लिए थे। जब साहब कुछ सरूर में हो गया तो बोलने लगा, “ओए बेटो! मैं कल चला जाऊंगा...तुम अपने नए साहब का इंतजार करो...ओए निंदरिया...बात सुन ओए तेरी तूंबी ज्या कहती है...टुंग-लुंग-लुंग...अब तेरी तूंबी कौन सुनेगा ओए...मैं कैसे सुनूंगा तेरी तूंबी...ओए आ मेरे पास...इधर आ!”

साहब ने मुझे अपने पास बिठा लिया। यह पहला मौका था जब मैं साहब के पास बैठा था...मेरी ज्या हिजमत थी साहब के पास बैठने की? “बात सुन ओए बेटा, तुम्हारी टुंग-लुंग-लुंग...बता मुझे, मैं कैसे सुनूंगा? तू तो अब यहां रह जाएगा, बता ओए मुझे, कैसे मिलेगा तू?” साहब ने आंखें भर ली थीं और मुझे बाहों में ले लिया, भले साहब शराबी था पर फिर भी उसे इस तरह नर्म दिल हुए देखकर मैं हैरान था।

“सर जी, किस जगह हुई है बदली?”

“बहुत दूर हुई है बेटा...बहुत दूर...ओए बेटा निंदर...तेरे गाने सुनकर मुझे चाव चढ़ जाता है...तेरी टुंग लुंग-लुंग ...अब मुझे कौन सुनाएगा, कौन पकाएगा मेरी रोटी? बता मुझे निंदर...कौन डालेगा भैंस को चारा...भैंस भूखी मर जाएगी...पहले बछिया मर गई ओए...कौन

उठाएगा गोबर? कौन कुतरेगा चारा? कौन मारेगा आवाजें? कौन बजाएगा तूंबी ओए बेटा...?”

अब साहब किसी बच्चे की तरह रोने लगा। किशन ने पानी का गिलास पकड़ते हुए कहा, “सर पानी पी लो...लो...।”

मैंने कहा, “सर पानी पीओ जी...हम कहीं नहीं जाते...आपके पास हैं...आपकी बदली कैंसिल हो जाएगी...आप हौसला करो...।”

“पानी रख दो यहां किशन बेटा...यह पकड़ा मुझे।” साहब ने बोटल की ओर इशारा किया। पैग बनाकर अंदर फेंका। तौलिए से आंखें पोंछीं...मूँछें संवारीं। मैं और किशन साहब के पास ही बैठे हुए थे।

“इधर आ बेटा निंदर...यहां नज़दीक आकर बैठ।”

“बात सुन ओए बेटा...अब जाते हुए गाना-वाना सुना दे मुझे...कोई गा यमले जट्ट का...ला ओए किशन इसकी टुंग-लुंग-लुंग कहां पड़ी है।”

किशन तूंबी लाया। मैं भी साहब को देखकर उदास-सा हो गया था। फिर मैं तूंबी टुनकाकर उस्ताद यमला जी का ही गीत गाने लगा :

असली सज्जन जद वी मिलिया

तज्केआं चड़े सरूर

तांघ दिलां विच्च रहे हमेशा

बेशक वस्से दूर

असली सज्जन दीद दे भुज्खे

नकली लोभी जर दे

लालचखोरे अज्खीं देखे

किसे किसे लई मरदे

असली दे मन धीरज देखी

नकली पाए फतूर

असली सज्जन...

साहब सिर मार-मारकर झूम रहा था और झूमते-झूमते ही साहब

की आंखें बहने लगीं। गीत अभी खत्म नहीं हुआ था। साहब बीच में ही बोलने लगा, “ओए निंदर...अब हम भी दूर के सज्जन हो गए ओए...कल को हमने भी दूर चले जाना है।”

साहब मरासियों के बच्चों की तरह रोने लगा था। मैंने गीत खत्म किया। तूंबी रख दी। साहब सामने पड़ी तूंबी की ओर देखकर बोला, “ओए निंदरी! तेरी टुंग-लुंग-लुंग कहां से सुनेगी अब...बेटा तू मेरे साथ ही चल...मैं तो तुज्हें साथ ही ले जाऊंगा...देखता हूं कौन रोकता है...।”

आज मैं साहब का यह वैरागी रूप देखकर हैरान था। कहां तो साहब गालियां देता था...खीझता था...कई बार मारने को भी आया था...पीठ में मुज्का भी मारा था...पर अब शराब पी होने के कारण बात अलग थी। साहब का मन बहुत पतला हो गया था। बहुत रात गई को साहब टिका था।

सुबह साहब ने जाना था। भैंस तथा और बड़ा सामान अभी कोठी से नहीं ले जाना था। यह बाद में ले जाना था...साहब ने नई जगह पर जाँइन करना था...इसलिए अकेला जा रहा था।

कचहरी से आए एक प्यादे ने मुझे बताया, “तेरा भी तबादला हो गया है...सैशन जज साहब के पास! तुमने भी आज ही वहां जाँइन करना है जाकर...।”

साहब कार में बैठने लगा। किशन पांव छूकर हट गया था। जब मैं जाते समय साहब के पांव छूने लगा तो मेरी भरी आंखें देखकर साहब ने गले लगा लिया और थपकी देकर चुपचाप कार में बैठ गया। कार चलने लगी...मैंने दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाया और अपने तबादले के हुज्म लेने के लिए कचहरी की ओर साइकिल मोड़ लिया। जब मैं कचहरी के बड़े गेट में घुसने लगा तो साइकिल रोककर अपने खाकी कपड़ों से आंखें पोंछ ली थीं।

और मैं गांव भागा!

अब मेरी ड्यूटी मुज्य जिला और सैशन जज की कोठी में लग गई थी। वहां कुछ आदमी और भी काम करते थे। दो माली थे, दो खेतीबाड़ी के काम के लिए रखे हुए थे। सैशन हाऊस के आस-पास काफी ज़मीन थी। उसमें गेहूं तथा और मौसमी फसलें उगाई जाती थीं। मैं अब पांचवां टायर ही था...उन चार आदमियों के साथ काम करना था...जो उन्होंने कहना था। वे चारों भी सरकारी थे...पज्के मुलाजिम थे! रोटी तैयार करने के लिए दो रसोइए अलग थे। जो कोई मुझे काम कह देता...मैं कर देता।...कभी मालियों के साथ गुढ़ाई...कभी गडओं की सेवा...कभी कमरों की साफ-सफाई...कभी फसलों को पानी...कभी-कभार कचहरी कोई काम और कभी बाज़ार से कोई चीज़ लानी होती।

साहब अच्छा था। अपने काम में मस्त रहता था। बीबी तोड़-तोड़कर खाती रहती थी। टिकने ही नहीं देती थी कभी। स्वभाव की बड़ी सज़्ज थी। गांव में रोज़ जाता था। भले दुखी होता या सुखी। साइकिल पर चढ़ते ही गाने लगता :

दड़ वट्ट ज़माना कट्ट

भले दिन आवणगे...

चार महीने गुज़रे। जज साहब की बेटी अपने छोटे-छोटे बच्चों समेत माँ-बाप को मिलने आई हुई थी। बच्चों को स्कूल से छुट्टियां थीं।

एक दिन मैं गांव से आता थोड़ा लेट हो गया था। आते ही बीबी ने सौ-सौ गालियां सुनाई, “तू गांव जाना बंद कर दे...यहां शहर में रह...कमरा ले ले किराए पर...तू किस बात का नौकर, तुम तो साहब

ही हो गया...रोज़ गांव मौज के साथ जाए और सुबह ठाठ-बाठ से मर्जी से आए...ऐसे नहीं चलेगी नौकरी तुझारी...।”

बीबी बहुत देर बोलती रही थी और मैं सुनता रहा था। वैसे भी कई दिनों से मैं दुखी-दुखी-सा महसूस कर रहा था। कभी-कभी पहले जज साहब भी...पिछले भी याद आते थे...। कभी मन चाहता कि यहां से कहीं दूर...बहुत दूर भाग जाऊं। ज़्यादा रुक जाएगा ऐसी नौकरी से मेरा? तूंबी भी अब नहीं बजाई थी कभी...मन बुझा-बुझा सा रहता। कभी सोचता, सारी उम्र इस तरह चपरासीपने में ही गुज़र जाएगी? ज़्यादा काम है यह?

यह अफसर आम लोगों का ज़्यादा इंसान करेगा...जब अपने घरेलू नौकरों (जो सेवा करते हैं...इनका पेट भरते हैं, इनकी सेवा करते हैं) के साथ ही बहुत बेइंसाफी करते हैं। यह कहां का कानून है...? वेतन सरकारी...काम कोठियों में। कागज़ों में ड्यूटी कचहरी में है।

सारी उम्र बर्तन धोते, गालियां खाते और गोबर उठाते ही निकल जाएगी मेरी...यह तो बिल्कुल सच है...। मेरे मन ने कहा था। कई दिनों से मेरा मन चालू-सा हो गया था।

दोपहर गुज़र गई थी। बीबी ने मुझे अंदर बुलाया और कहा, “अरे तनज़वाह किस बात की लेता है? कोई काम करते हुए तो मैंने तुम्हें देखा नहीं कभी...चल ऐसा कर वो पिछले कमरे में स्वीटी ने पेशाब कर दिया है...वहां ज़रा पोछा मार दे...कर साफ जाकर...चल...साफ कर।”

“मैं नहीं बीबी जी पोछा मारूंगा...मैं नहीं मारूंगा...औरों से मरवाओ पोछे...। मुझे पोछे मारने के लिए नहीं रखा गया...कल कहेंगी, हमारे बच्चों की लेटरिन उठा...मैं नहीं...मैं कोई जमांदार हूं...ना बीबी जी ना...?”

इतना सुन बीबी फटने को आ गई थी, “तेरा बाप मारेगा पोछा? अगर मारना नहीं तो यहां ज़्यादा धक्के खाने आते हो? जा अपने घर,

दफा हो...कैसे बोलता है मेरे आगे...तू तो बहुत बेशर्म है...मुझे जवाब दे दिया, चला जा यहां से...।”

“बीबी जी मैं नहीं पोछे मारूंगा...मैंने कह दिया, मैं नहीं मारूंगा...।”

“ना मार...ना मार...जा भाग जा यहां से...खड़ा ना हो यहां।” बीबी मुझसे भी ज़्यादा गर्म थी।

“अब यहां ना दिखाई देना मुझे...।”

मैंने साइकिल उठाया। कचहरी आया, कांपते हाथों से पंजाबी में इस्तीफा लिखा। सब दज़्तर वाले हैरान थे। सैशन जज साहब को बीबी ने सारी बात फोन पर बता दी थी।

सुपरिटेण्डेंट भी हैरान था, “बेटा ठंडे दिमाग से सोचना था।”

“ना जी ना.. सर, सोचा बहुत...कुज़ी नौकरी है...मैं मर जाऊंगा सर... प्लीज़...धन्यवाद आपका...आप बहुत अच्छे हैं...मुझे अब जल्दी से और हमेशा के लिए छुट्टी दे दीजिए...मैं जाऊं...।” यह कहते हुए मैं रो दिया।

इस्तीफे वाला कागज़ देकर मैं कचहरी से बाहर आ गया था।

शाम हो रही थी। मेरा दिल किसी चूजे की तरह धड़क रहा था...बिल्कुल उसी चूजे के दिल की तरह जो अभी-अभी बिल्ली के मुंह से बचकर दौड़ा हो।

मैंने अपना साइकिल गांव को जाती सड़क पर कर लिया। आज सड़क पर बहुत रौनक थी। आज्ञाद लोग अपने कामों से बड़ी मौज से बेफिक्री से आ-जा रहे थे। कोई गाता जा रहा था...किसी के चेहरे पर दिनभर के सच्चे-सुच्चे श्रम का सुरूर था। आज मैं भी उन आज्ञाद रूह वाले लोगों में शामिल हो गया था।

सड़क के इर्द-गिर्द हरी-हरी फसलें आंखों को ठंडक और मीठी ठंडी हवा मन को शांति बज़्श रही थी। खेतों की हरवाई पर पक्षी उड़ाने भरते हुए चहक रहे थे। पक्षियों के गीतों ने मेरे मन में अजब-

सी तरंग छेड़ी और मेरा दिल भी कुछ गाने के लिए कर आया। एक पल मुझे लगा कि जैसे आज मैं भी उन पक्षियों के साथ साथ उड़ रहा हूँ।

आज बौरियों की ढाणी से कुजे भी नहीं भौंके थे...। अगर भौंकते भी तो मैंने उन्हें आज गालियां नहीं देनी थीं। बौरियों के कच्ची ईंटों के घर मुझे अपने-अपने और प्यारे-प्यारे लगे। टूटी कच्ची सड़क मुझे जी.टी. रोड लग रही थी। आज मेरा अपना ही विलक्षण संसार था। आज मैं बिल्कुल हल्का था और साइकिल पर उड़ता-उड़ता गांव की ओर जा रहा था। मैं ऊंचे सुर में गा रहा था :

दड़ वट्ट, ज़माना कट्टिया
भले दिन आ गए ओए...
भले दिन आ गए ओए...
